रचनाकार ''मंगल' रचनाकाल – 26 जनवरी, 2001
कवि सम्मेलन मुशायरा

शैर :– प्राण निकलेंगे जब भी, आत्म स्वर गूंजेगा यही ।
मुझ को भारत की धूल चाहिये, बैकुण्ठ नहीं ।।

कविता :– शीर्षक –– यदि सुख से जीवित रहना है ।

1. वैमनस्य विष त्याग, प्रेम रस नयनों तक भर के पीना है । यदि सुख से :
जिसने अपनी गोद में लेकर, अनुपम प्यार दुलार दिया है ।
जिसने ममता का आंचल, मलमूत्र लपेट संवॉर लिया है ।
हमने सदां ठोकरें मारी, सौतेला व्यवहार किया है ।
तो भी मेवे, कन्द मूल फल, फूलों का उपहार दिया है ।
उस माँ के चरणों की रज पर, न्यौछावर होते रहना है । – यदि सुख से :

2. पालन–पोषण करने वाली, की रक्षा दायित्व हमारा ।
बुरी नज़र से ताकने वाले, को देना अन्जाम करारा ।
हर दिन खड़ा कसौटी लेकर, खोट खरी पहचान भुनाना ।
अन्तिम क्षण तक उपकार चुकाना, जननी का मत दूध लजाना ।
अपने पुरखों की जन्म भूमि को, अपनी ही सदैव कहना है । यदि सुख से :

3. कोई चुनाव में स्वर्ग दिखा कर, जनता से धोखा करता है ।
कोई ब्लेक घूस, घोटाले, लूट–लूट कर घर भरता है ।
कोई प्रेयसि प्रेम पाश में बंधा इश्क का दम भरता है ।
कोई अशान्त, हत्या, बलात्–कर, जैल को अपना घर करता है ।
(किन्तु) शांति उसी सच्चे सपूत की, देशप्रेम जिसका गहना है ।
वरना जीवन भर दहना है । यदि सुख से जीवित रहना है ।

4. विश्व मान्य सबसे विशाल, यह लोकतन्त्र है देव लोक सा ।
एटमी शक्ति और स्नेह परस्पर, बिना मूल्य के प्रेम, थोक सा ।
बाहरी शक्तियां दुखित चकित, वे मना रहे संताप शोक सा ।
रे–मित्र पहल ठुकराई यदि तो, मौत खड़ी ले अतुल तोक सा ।
(अरे) मिला दान उपकार मान, सन्तोष की नाव सदा खहना है । यदि सुख से जीवित रहना है ।
वैमनस्य विष त्याग, प्रेम रस नयनों तक भर के पीना है । यदि सुख से :

तोक – पुराने जमाने में सजा में गले में लटकाने वाला वज़न

रचनाकार ''स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती'
रचनाकाल – 20 सितम्बर, 1992
सार्वदेशिक साप्ताहिक पत्रिका

कविता :– शीर्षक –– धूल व्यसनों की जो झाड़ों तो कोई बात बने ।
अविध्या दूर लताड़ो तो कोई बात बने ।

1. वृक्ष पाखण्ड का दिन–दिन पनपता जा रहा है ।
मूल से उसको उखाड़ों तो कोई बात बने ।

2. हर कोई बैठा है भगवान यहां पे बन कर ।
इनकी करतूतें उघाड़ों तो कोई बात बने ।

3. अकड़ कर घूमते हैं भक्त बन के देश द्रोही ।
पजम्मा इनका जो फाड़ों तो कोई बात बने ।

4. यहां बरसाती मैंढ़क ज़ोर से चिल्लाते है ।
शेर सम आप दहाड़ों तो कोई बात बने ।

5. अनेक मिथ्यावादी, आगे बढ़ते जाते है ।
पकड़ कर पांव पछाड़ों तो कोई बात बने ।

6. बगुला भक्तों ने गुरूड़म का जाल फेलाया ।
बाग़ तुम इनका उजाड़ों तो काई बात बने ।

7. विश्व कल्याण के साधन सभी मिल कर संजायें ।
पताका औम की गाड़ी तो कोई बात बने ।

8. ईर्ष्या द्वेष और अभिमान त्याग कर राघव ।
संगठन को न बिगाड़ों तो कोई बात बने ।

महर्षि दयानन्द के प्रति ''महिमा महान है'' रचनाकर अन्य की''

1. शिव के शिवालय की टंकारा महालय की, उपदेश विद्यालय की, महिमा है ।
2. लक्ष्मण के भ्रात की, भादौं की रात की, बोध शिव रात की, महिमा महान है ।
3. नन्द के गोपाल की, सुमित्रा के लाल की, मूल शंकर बाल की, महिमा महान है ।
4. पवन सुत हनमन्त की, ऋतुओं में बसन्त की, दयानन्द सन्त की, महिमा महान है ।
5. पाखण्ड हारी की, सच्चे शिव पुजारी की, मूल व्रत धारी की महिमा महान है ।
6. गंगा के नीर की, भोजन में खीर की, दयानन्द फक़ीर की, महिमा महान है ।
7. सुबह के वक्त की शरीर में रक्त की, मूल शिव भक्त की, महिमा महान है ।
8. शत्रुहन की मात की, स्वस्थ सुन्दर गात की, टंकारा गुजरात की, महिमा महान है ।
9. चन्दन के बाग़ की, मारवाड़ी पाग की, दयानन्द वीतराग की, महिमा महान है ।
10. तारों में चन्द की, कविता में छन्द की, स्वामी दयानन्द की, महिमा महान है ।

.....

अग्रसेन जी के प्रति गीत

रचनाकार : ''मंगल''
रचनाकाल : सन 1979

अंग्रेजी तुमने वैदिक धर्म की, सरिता बहाई है ।
उठाया कष्ट भारत देश हित, ज्योति जगाई है ।।

1. महीधर का दुलारा, देश के जन–जन का प्यारा था ।
आर्य जन का सहारा, राज्य अग्रोहा सवांरा था, वहीं पूर्वज हमारा था
उसी सम्राट की प्यारी, सवारी आज आई है । अग्रजी तुमने ....

2. अठारह वीर सेनापति, उसी गणराज्य स्वामी के ।
अठारह गोत्र निर्माता और जनतंत्र हामी के ।।
तपस्वी अग्रगामी के ।
चरणपूजा में उसकी हमने यह गरदन झुकाई है । अग्रजी तुमने ...

3. तुम्हारी वंदना गाऊं कहां, वह ज्ञान है मेरा ।
तुम्हारी ज्योति को देखूं न ऐसा ध्यान है मेरा ।।
यह नीरस गान है मेरा ।।
दया लो द्वार तेरे वश ने टोली सजाई है ।
कृपा कर आज तेरे अंश ने झोली बिछाई है ।
अग्रजी तुमने वैदिक धर्म की सरिता बहाई है ।
(पावन वंश)

ooo

अग्रसेन जी महाराज की महिमा गान ''ध्वनि तेरे कूचे में''

रचनाकार : ''मंगल''
रचनाकाल : सन् 1979

सन्देशा स्वर्ग का धरती पे लेकर आने वाले हो ।
अग्रवंशों में सुख समृद्धि के सरसाने वाले हो ।

1. तुम्ही ने सत्य का सिद्धान्त जीवन में उतारा था ।
अहिंसा नीति पर चलना तुम्हें प्राणों से प्यारा था ।।
वीरता प्रण तुम्हारा था ।
देश में भाईचारे की सुधा बरसाने वाले हो । सन्देशा स्वर्ग ...

2. तुम्हारे वंश को अब प्यार और सौहार्द में रंग दो ।
हमारे मन को सेवा, त्याग शक्ति, शौर्य से भर दो ।
देश सेवा का यह वर दो ।
देव, कब फिर से इस ध्वजराज को फहराने वाले हो । सन्देशा स्वर्ग ...

3. तुम्हारे ज्ञान जल की बून्द, जीवन दान दे देगी,
तुम्हारे वीर पथ की धूल सच्चा मार्ग कह देगी ।
दर्श नैनों को ओ! रणधीर, कब दिखाने वाले हो । सन्देशा स्वर्ग ...

ooo

तब कविता खुद बन जाती है ।

रचनाकार : ''मंगल''
रचनाकाल : 11.6.1994

मीना बाजार के माध्यम से अगणित सतीत्व लुटवाता है ।
निर्भीक गंग कवि को गयंद पावों से जो चिरवाता है ।
जो गो रक्षक कवि नर हरि को, आजीवन जैल भुगाता है ।
जो पुण्य भूमि की मर्यादा से निज वासना बुझाता है ।
(मीना बाजार के द्वारा)
(अजी) जब घांस की रोटी से वंचित, भूखा बालक सो जाता है ।
(अब) निरपेक्ष धर्म की आड़ में, धारा वाहिक विष बरसाती है ।
(अरे) उस महान मेवाड़ी को तज, ठग को महान बतलाती है, तब कविता ...

2. शासन आसन के ललाट में, बाहरी छाप ठुक जाती है ।
या नव पीढ़ी आगे बढ़ कर, अपना पुंसत्व कटाती है ।
आतंक वाद सम्मुख झुक–झुक, जब लोक तन्त्र घिघियाती है ।
जब देव वंश की सुता, आज गंड़ा ताबीज भराती है ।
जब धर्म प्रचारक द्वारा, सच्ची राह नहीं मिल पाती है ।
और भ्रमित बाल, जब गुण्ड़ों को राखियां बांधती जाती है ।
उन एशिर्याड क्रीड़ाओं में आतिथ्य की घड़ियां आने पर
(अरे) गोपाल की पुण्य धरा पर जब गोमांस परोसी जाती है । तब कविता ...

3. अक्षर विहीन मानव समूह, लख कवि की कलम नही जब चलती ।
दिन रात प्रेमिका अधरामृत कवताएं पीकर जब हैं पलती ।
शिक्षा विहीन के रक्त से नेता के गढ़ जब फानूसें जलती ।
जब बाल्मीक, तुलसी, मीरा, आत्माएं रोती और मचलती ।
(अरे) जब वेद ज्ञान की ज्ञान धरा पर महिला अंगूठा चिपकाती है ।
मेरी गर्दन झुक जाती है । तब कविता खुद बन जाती है ।

ooo

वृक्ष की दीन पुकार
(अतुकान्त)

रचनाकार : ''मंगल''
रचनाकाल : 10.6.1994

रुक जा, मत मार मेरी छाती में कुल्हाड़ी, रोयेगा, मैंने, नहीं,
मैंने ही नहीं – मेरे पूर्वजों के परिवारों ने, करोड़ों वंशजों ने,
हाय तुझ निर्मोही को साथी बनाया । मीत बनाया ।

1. युगों–युगों से तुझको, छाया दी, वर्षा झेली, पानी दिया,
प्रण वायु और हरियाली दी, फल, पत्ते, फूल, मेवे, और
औषधियाँ दी और अन्न दे–दे कर–
तेरे प्राणों को बचाया, गोद में बिठाया, हिंडोलियां दी और
लोरियां गा–गा कर सुलाया । निर्मोही तुझको साथी बनाया ।।

2. परन्तु ओ कृतघ्न, ओ नुगरे, ओ अहसान फरामोश, तूने मुझे
काटा, चबाया, चगदे किये, मेरी खाल उधेड़ी, और टुकड़े–टुकड़े
किये, तड़पाया, उबाला, सुखाया, जलाया, और अनेकों भांति तेरी विलासिताओं के
महलों को सजाया ।
यहीं नहीं, वहां भी हर डगर–डगर, नगरी और नगर से
मेरा ओर मेरी जाति वालों का तूने कर दिया सफाया ।
किन्तु हाय तुझ निर्मोही को मैंनं साथी बनाया ।

3. तुझे याद है ! याद कर, जन्म के पश्चात पलना बन कर गोद में किसने झुलाया ?
याद है !
तेरी दुल्हिन के सामने अपनी पीठ पर किसने बिठाया ?
अरे ! और तो और तेरे जीवन के तीसरे और चौथे पड़ावों में
सहारा दे दे कर किसने चलाया ? बल्कि
अन्तिम यात्रा में चार–आठ कन्धों के सहारों पर तुझे लेटा कर बड़े,
आराम से अन्तिम मंज़िल पर पहुंचाया और अपने टुकड़ें करवा कर
उनकी सीढ़ियों से तुझे शांति का संदेश मैंने ही सुनाया ।
परन्तु मैंने भूल की जो तुझ निर्मोही को साथी बनाया ।

4. परन्तु सुन ! श्रवण कुमार के घातक की भांति, प्यासे चातक
की तरह, तुझको नहीं मिलेगी एक बूंद भी स्वांति,
वे तो झेल गये अभिषाप । परन्तु तू नहीं सह सकेगा
मेरा परिताप, औ, मेरे वंश के हत्यारे, तू
अब रोयेगा, आंखों को रक्त से भिगोयेगा ।
मैं अब नहीं दूंगा प्राण वायु ! अरे ! अब कौन रोकेगा बाढ़,
कौन देगा तुझे फल, पुष्प और झाड़, अब मिलेगी तेरे ही
मन से तुझे धिक्कार और लताड़ ।
पहले भी मैने कितनी ही बार पक्षियों की वाणी द्वारा,
तुझे समझाया, रोया, चिल्लाया, गिड़–गिड़ाया फिर भी

मैंने भूल की और अपना वरद् हस्त तेरे सिर से नहीं हटाया,
परन्तु तेरे समझ में कुछ नहीं आया तो भी मैंने हाय
निर्मोही तुझीको साथी बनाया ।

5. अब भी समय है, केवल काग़जों के आंकड़ों में नहीं मेरे
नव–नव शिशुओं को पानी और भोजन दे–दे कर मानवता को
पशुओं और पक्षियों को बचा सकता है ।
शत्रुता न कर, मेरा आशीर्वाद पा सकता है ।
आज अन्तिम बार मैंने तुझे मेरा अपार दुखड़ा यूं सुनाया,
और यह सन्देश तुझ को अशान्त कवि की लेखनी द्वारा,
मरते–मरते भी तुझ तक पहुचाया ।
परन्तु हाय ! मैंने भूल की जो अब तक तुझ निर्मोही को साथी बनाया ।

ooo

साक्षरता अभियान कवि सम्मेलन (सूचना तुरन्त तैयार रचना)

रचनाकार : ''मंगल''
रचनाकाल : 10.81994

कवित– शिक्षित समाज बीच निरक्षर जब बैठता है,
तो जैसे सोने के सिक्कों में खोटा या जस्ता है ।।
समाज में, देश में, राष्ट्र बाज़ारों में ।
अनपढ़ की मनों, दशा कुछ घटिया और ख़स्ता है ।
माता–पिता को कोसता है, भाग्य को कचोटता है ।
शिक्षा बिना संकटों के कीचड़ में गंचता है ।
पेन्ट, सूट, टाई, धोती, सलवार से चाहे हीरो लगे ।
किन्तु शिक्षाहीन व्यक्ति तो काग़ज (का) गुल दस्ता है ।

ooo

अब स्वप्न त्याग सोने वाले ।

(शाहबाद –– में अग्रसेन जयन्ती पर)

प्रेरणा – अग्रवाल समाज को चुनौती ।

रचनाकार : ''मंगल''

रचनाकाल : सन 1961

अब स्वप्न त्याग सोने वाले ।
जगती जागी तू सोया है, उठ जाग याद कर उस युग की ।
प्रणवीर प्रतापी अग्रसेन के जगत प्रसिद्ध मनोबल की ।
जिसके पूर्वज की वीर भुजायें, परशुराम से टकराईं ।
वह आज सो रहा कायर बन, इतिहास अमर करने वाले । अब स्वप्न ...

संसार प्रगति कर रहा नित्य, तेरा समाज पिछड़ा जाता ।
कायरता होड़ लगा बैठी, तू शैया पर ही मद माता ।
भटकों को राह लगाती थी, वह तेरी अग्रिम बुद्धि कहां ।
दीपक तल होता अन्धकार, चरितार्थ कहावत हुई यहां ।
रे युवक समाज सुधारक का, कल्याणी बीड़ा अपना ले । अब स्वप्न ...

लाखों विधवायें सिसक रहीं, अनुचित नियमों में बंधी आज ।
शिक्षा विहीन बच्चों की संख्या से परिपूरित है समाज ।
बरबाद हो रहे अनुचित अवसर कर–कर के नत भरे लाज ।
तू देख रहा यह सब अनर्थ, मुख पर पर्दा अपने ड़ाले । अब स्वप्न ...

जिन दूषित भावों के कारण, निज भूमि रहीं युग तक चेरी ।
अंग्रेजी राज्य रहा जिससे, वह फूट नहीं जाती तेरी ।
जिस मनोवृत्ति के फलस्वरूप, खण्डित हो गई मातृ तेरी ।
वह सर्व नाशिनी द्वेष भावना, अब भी नहीं गई तेरी ।
कर बहिष्कार उस पतित फूट का, ओ भामाशाह के मतवाले । अब स्वप्न ...

तेरी रग–रग का रक्त आज क्या शक्ति विहीन बना पानी ।
पर सेवा कर न सकी तो फिर, है व्यर्थ जवानी मस्तानी ।
युग नायक अग्रसेन जी का नुसख़ा पी, बढ़जा सेनानी ।
तेरे चरणों को विजय स्वयं चूमेगी, ताकत अज़मा लें । अब स्वप्न ...

लक्ष्मियाँ बने लक्ष्मीबाई, अबला से सबला बन जायें ।
गुरू जन हो तेजस्वी, त्यागी, वें करें दान और हर्षायें ।
बालक भी वीर हकीकत सम, बली को त्यौहार समझ पावें ।
इतने सुधार कर मानव के सब पूर्ण कुशल हो गुण गावें ।
सामाजिक जीवन का कोना, कोना भर सुख से हर्षा ले
अब स्वप्न त्याग सोने वाले ।

रचनाकार श्री गोपाल कृष्ण गोयल
बृजराजपुरा कोटा ।

तुम को प्रणाम – शत–शत प्रणाम

1. हे अग्रवंश के अग्रदूत,
अभ्युदय दूत, भारत सपूत ।
हे महा पुरुष, हे जाति प्राण, तुमको प्रणाम शत–शत प्रणाम ।

2. हे अग्रवाल कुल तिलक भाल,

हे अग्र वंश के चिर मशाल, हे जाति उजागर पुण्य धाम, तुम को प्रणाम ।

3. हे अन्न दाता, हे प्रजा पाल,
हे महाराज बल्लभ के लाल, रक्षक पोषक सुख शांति धाम । तुम को प्रणाम ।

4. हे वंश प्रवर्तक अग्रसेन,
ओ पूज्य पिता मह अग्रसेन स्वीकार करो मेरा प्रणाम । तुमको प्रणाम ।
शत–शत प्रणाम

रचनाकार ''छाजूराम''

आदर्श नारी की पहचान ।

कविता–

प्रातः काल उठि के सास और ससुर के ।
छूती पैर, पति के वह शीश भी झुकाती है ।
चक्की पीस लेती और दूध भी बिलोती नित ।
घर को पवित्र राशि झाड़ू भी लगाती है ।
संध्या यज्ञ करती पुनि शास्त्रों को पढ़ती ।
शुभ कर्म करती, शुद्ध भोजन बनाती है ।
सिनेमा न जाती कभी, पति सेवा करती है ।
छाजूराम वह सदा सत्संग में जाती है ।

आर्य समाज सुधार

रचनाकार ''मंगल'' रचनाकाल सन् 1961

''ध्वजगायन''

अग्र वंश का प्रतीक प्यारा ।
झण्ड़ा ऊंचा रहे हमारा ।।

1. इस ध्वज की है शान निराली, सबका मान बढ़ाने वाली ।
शत्रु शीश का गर्व कुचल कर, यों, अभिमान मिटाने वाली ।
प्रतिभा पूर्ण सभी का प्यारा ।। अग्र वंश का प्रतीक प्यारा ।

2. नभ में इसकी कान्ति प्रकाशित दशों दिशाओं में ध्वनि गुंजित ।
इससे जगती सदा प्रभावित, भारत में युग–युग से पूजित ।
न्यौछावर है प्राण हमारा, अग्र वंश का प्रतीक प्यारा ।।

3. अग्रसेन सम्राट बड़े थे अन्यायों से खूब लड़े थे ।
सत्य धर्म पर रहे खड़े थे, त्याग मार्ग पर सदा बढ़े थे ।
शत्रु कहीं से जब उमड़े थे वे सब ध्वज के चरण पड़े थे ।
देहली में लहराने वाला अग्र वंश का प्रतीक प्यारा ।

4. आओं बान्धव मिल सब आवों, एक सूत्र में सब बंध जाओं ।
निर्धन को भी गले लगाओं आपस के मत भेद भुलाओं ।
केशरिया ध्वज को फहराओं, धरती से अम्बर ले धाओं ।
है महान यह पर्व हमारा अग्र वंश का प्रतीक प्यारा ।
झण्ड़ा ऊंचा रहे हमारा ।।

रचनाकार "अन्य की"
"अग्रवाल क्या है"

मैं अग्रवाल हूँ अग्रवाल, होने का मुझको स्वाभिमान ।
1. मेरी नस–नस में आर्य रक्त, मैं अग्रसेन का वंशज हूँ ।
मैं मानवता का दिव्य तेज, मैं वैश्य वर्ग का सूरज हूँ ।।
मैं हूँ भारत की एक शान । होने का मुझको स्वाभिमान :

2. मैं भारत मां का वरद पुत्र, मम हाथों में व्यापार तन्त्र ।
मैं हूँ स्वदेश की अर्थ रीढ़, मैं भारत का समृद्ध मंत्र ।
मैं हूँ समाज का कीर्तिमान, होने का मुझ को स्वाभिमान :

3. सच्ची मानवता के प्रतीक, श्री नन्द यशोदा वैश्य जाति ।
जिनके आंगन में गीता के गायक खेले थे भांति–भांति ।
है वही रक्त मुझ में महान । होने का मुझको स्वाभिमान :

4. मैं तुलाधार का वंशज हूँ, जांजलि तक को उपदेश दिया ।
मैं भामा शाह का वंशज हूँ, अर्पण जिसने सर्वस्व किया ।
जिनका चहुं दिशि है यशोगान । होने का मुझको स्वाभिमान :

5. हिन्दी युग, आदि प्रवर्तक वे, थे भारतेन्दु श्री हरिशचन्द्र ।
वाणी उदार प्रतिभाशाली उनके समक्ष सब विज्ञ मंद ।
वे अग्रवाल थे देश शान । होने का मुझको स्वाभिमान :

6. श्री जय दयाल जी, गोयन का, हनुमन प्रसाद जी पौद्वार ।
दी बहा भक्ति गंगा जिसने, हो गये सभी धर्मावतार ।
में वही खून हूँ प्राणवान । होने का मुझको स्वाभिमानः

7. मुझ में ऋषियों का महातेज, वीरों का है वीरत्व खरा ।
मैं दिव्य शक्ति, मैं दिव्य रूप, वेदोक्त ज्ञान भण्डार भरा ।
मैं राम, कृष्ण पद रज महान । होने का मुझ को स्वाभिमान :

8. मां लक्ष्मी का वरदान मुझे, मेरा सद्ज्ञान कर्म, परहित ।
है गर्म पवित्र खून मुझ में, पर दुख कातरता बहती नित ।
मैं ईश भक्त, मैं धर्म प्राण होने का मुझ को स्वाभिमान
मैं अग्रवाल हूँ अग्रवाल, होने का मुझ को स्वाभिमान ।

रचनाकार "मंगल" रचना काल सन् 1963–64
"अग्रसेन जी के प्रति"

शैर :– जिसने सारी जिन्दगी इस वंश के खातिर लुटा दी ।
उसकी पूजा में हम अपनी एकता ज्योति जला दें ।
कविता
अगर नृप अग्रसेन नहीं आता
कौन देश में अपने सिर पर शाही छत्र सजाता ।। काश नृपः

1. क्षात्र धर्म तज वैष्णव बन कर शासक का सब धर्म निभाया ।

वंश बढ़ा कर जाति बनाई, सारे समाज को पनपाया ।।
निर्धन जो आया समाज में, उसको अपने गले लगाया ।
ना होते हम ना तुम होते, कैसे अग्रवाल कहलाता ।। काश नृपः अग्रसेन

2. कोई केवल शासन करता बन–बन कोई भूखा फिरता ।
कोई छोटी सी कूटिया में श्रम कर जीवन यापन करता ।
कोई केवल मन्दिर मठ में संध्या पूजन में रत रहता ।
देश–देश व्यापार बढ़ा कर घर–घर कौन अन्न पहुंचाता ।। काश नृप अग्रसेनः

3. अग्र प्रवर्तक त्यागी, तपसी, तन–मन अर्पण करने वाले ।
कूद पड़ों तुम चन्द्र किरण से लाखों हम सब तेरे हवाले ।
तेरे बिना आज धरती पर किसी दीन को कौन सम्भाले ।
हम सब हो जायें निहाल यदि तू फिर आ जाये मुसकाता । काश नृप अग्रसेनः

4. ऐसा आशीर्वाद लुटाओं, हम सब को फिर एक बनाओं ।
नूतन वर–वधुओं के घर में स्वर्णिम आभा तुम बरसाओं ।
शौर्य, त्याग, सिद्धान्त हमारी रग–रग में प्रतिपल पहुंचाओं ।
लौट न जाऊँ द्वार से खाली, तुम से पिता–पुत्र का नाता । काश नृप अग्रसेनः नहीं आता ।
कौन देश में अपने सिर पर शाही छत्र सजाता ।

अग्रवंश ध्वजवंदना

रचनाकार : ''मंगल''
रचनाकाल : 1948

क्या मस्त–मस्त लहराता नभ में यह महान ध्वजराज ।

1. केशरिया रंग बिराजे, छबि देख–देख अरि लाजे ।
जगती में डंका बाजे, झुकते थे सब महाराजे ।
अग्रोहागढ़ पर फहराया था, यह महान ध्वजराज । क्या मस्त–मस्त ...

2. इसको ले अग्र त्यागी ने, निज वंश के सम्राज्ञी ने ।
जनपालक अनुरागी ने, महावीर महा भागी ने ।
जिसको फहराया आर्यवर्त में, यह महान ध्वजराज । क्या मस्त–मस्त ...

3. लहरों से प्रेरित करता, सद्भाव हृदय में भरता ।
इसको प्रणाम जो करता उसके कष्टों को हरता ।
त्यागों विद्वेश हाथ में लेकर यह महान ध्वजराज । क्या मस्त–मस्त ...

4. श्री अग्र विद्वेष दिवस यह आया, उत्साह साथ यह लाया ।
ध्वज की सुखदायी छाया, निर्मल करती यह काया ।
न्यौछावर है सर्वस्व इसी पर, यह महान ध्वजराज । क्या मस्त–मस्त ...

ooo

अग्रध्वज अभिवादन

रचनाकार : ''मंगल''
रचनाकाल : 22.9.1979

ध्वजराज तुम्हें शत–शत प्रणाम
कितना महान कैसा ललाम ।।

सुन्दर केशरिया रंग तेरा, न्यौछावर होता तन मेरा ।
जिस के चरणें में युग–युग से ही युग पुरुषों का था डेरा ।।
झुकता जन–जन सुन तेरा नाम । ध्वजराज तुम्हें शत–शत प्रणाम ।

तू अग्रसेन का प्यारा है, जीवन सर्वस्व हमारा है ।
जिसको तूने ललकारा है, मिल सका न उसे सहारा है ।
तू अग्र वंश का सुखद धाम ।। कितना महान कैसा ललाम ।
ध्वजराज तुम्हें शत–शत प्रणाम ।

ooo

रचनाकार 'मंगल'

राष्ट्र रचनाकाल 10.7.1991

नोटः अशोक वाटिका में सीता जी हनुमान जी की बात और सीता द्वारा सन्देश ।
(राग यमन पर आधारित)

वीर सन्देश जो अन्तिम क्षणों में लाये तुम ।
डूबती नाव की पतवार जैसे आये तुम ।

1. (देवर लक्ष्मण के प्रति)
मेरे कटु वाक्य उन को तीर से चुभते होंगे ।
फूल देवर के उर में कांटे ज्यों उगते होंगे ।
क्हना अपराध मेरे भूलें या क्षमा कर दें ।
अन्यथा सिन्धु में मुझको डूबा शिला धर दें ।
आर्य से मेरी व्यथा कहना जो पठाये तुम डूबती नाव की पतवार :

2. (हनुमान से)
क्या मेरे देश के आर्यों ने शौर्य छोड़ दिया ?
अपनी माटी की सुरक्षा से मन को मोड़ लिया ?
वीरों के देश में क्या कायरों के जत्थे हैं ?
पिनाक तोड़नेवाले क्या अब निहत्थे हैं ?
हाल बिखरे हुये जनतन्त्र के सुनाये तुम । डूबती नाव की पतवारः

3. अब भी क्या सैकड़ों सीतायें हरी जाती हैं ?
आत्मदाहों की चिताएं भी चुनी जाती हैं ।
हाय फुटपाथों पर निर्वस्त्र लाल हैं सोते हैं ।
झुकी कमर से बढ़ता बोझ ऋण का हैं ढोते ।
कितने बेहाल समाचार लेके आये तुम । डूबती नाव की पतवारः

4. ताज साँपों के सिर पे, मौंत मयूरों की क्यों ?
हाला बंगलों में ढुले, झोंपड़ी में आंसू क्यों ?
क्रम जो हत्याओं के नेताओं से न रूक पायें ।
मैं संभालूंगी कमान, मुझको आके ले जायें ।
तीर से चुभ रहे सन्देश जो सुनाये तुम । डूबती नाव की पतवारः

5. मूल्य कम हो गया मुद्रा का या कि मानव का ।
स्वर्ण रक्खा है रहन या कि मान भारत का ।
अपने सिद्धान्त की मंजिल से गिर गये नेता ।
देश बिखरेगा कई बार यदि नहीं चेता ।
बाहरी दानवों की जीभ लपलपाती है ।
उनको पैंसठ की, इक्हत्तर की शर्म खाती है ।
एटमी अस्त्र क्यों निर्माण कर न पाये तुम । डूबती नाव की पतवारः
जैसे आये तुम, वीरे सन्देश जो अन्तिम क्षणों में लाये तुम ।

रचनाकार 'मंगल' रचनाकाल 2 मार्च, 1993

निराकार – सरस्वती वन्दना 'राग कल्याण पर आधारित'

वेदमाता सुरसवती प्रणाम लो मेरा ।
सरस्वती की शरण में सुधाम हो मेरा ।

1. वेद शास्त्रों में तेरा रूप चमचमाता है ।
जिससे अज्ञान मिट, प्रकाश जगमगाता है ।
सारा विद्वन तेरा ही ब्रह्म तेज ध्याता है ।
तेरे दर्शन में रसिक सुख में डूब जात है ।
भीख मेधा की मिले, यह इनाम हो तेरा । वेदमाता .....

2. मेरी अभिलाष है, साहित्य महल में रहना ।
तेरे सानिध्य में अवसान तक टहल करना ।
कोई वित्तेषणा, लोकेषणा नहीं इच्छित ।
अन्त क्षण तक सृजन से मुझ को न करना वंचित ।
काव्य मंडित प्रत्येक, रोम, चाम हो मेरा । वेदमाता .....

3. तेरे आंचल में ज्ञान सिन्धु सुधा बहता है ।
देव वाणी में दया दान का स्वर रहता है ।
पवित्र कर्ता ज्ञान, बुद्धि की आकर तुम हो ।
अग्य तम क्लेश निवारक हो, दिवा कर तुम हो ।
ब्रह्म रूपा की साधना ही काम हो मेरा । वेदमाता .....

4. सुना है गुणवती, तुम दिव्य गुण लुटाती हो ।
आप गायत्री, मोक्ष मार्ग भी बताती हो ।
कुमार्ग त्याग, यज्ञ कर्म भी सिखाती हो ।
साधकों के हृदय में, आप बैठ जाती हो ।
सच हो तो, सेवकों के साथ नाम हो मेरा । वेदमाता .....
सरस्वती की शरण में सुधाम हो मेरा ।।

रचनाकार 'मंगल' रचनाकाल 13 जनवरी, 1993

नोटः कवियों द्वारा बार–बार कवि–गोष्ठी का प्रोग्राम बनाने और फिर नहीं आने और मेरे द्वारा प्रतीक्षा करते रहने के फलस्वरूप रचना ।

शीर्षकः 'आपका सानिध्य पाता'

स्थाई

मैं न कोई गीत गाता, आपकी सुनता न मेरी कुछ सुनाता ।
चार छन्दों के सहित् यदि आपका सानिध्य पाता, अपना सब कुछ भूल जाता ।

1. मानता हूं तुम किसी कारण से आ पाये नहीं थे ।
यह विदित मुझको नहीं, तुम चांद पर थे या यहीं थे ।
मेरी कुटिया में चरण लाये न, क्या 'हिमगिरि चढ़े थे ६
या अशिक्ति पाक को शिक्षा सुनाने जा खडे थे ।
कल्पना द्वारा ही जो सन्देश मुझ तक पहुंच जाता ।
तो न खिडकी खोल बैठे मैं यहां पर उंघ पाता । यदि आप का .....

2. युगल वर्षो से प्रतीक्षा नैन कर–कर थकित मेरे ।
कार्यक्रम से घृणा है या मीत इतने व्यथित मेरे ।
हिन्द की हिन्दी से यूं उपराम लखि दृग चकित मेरे ।
कर रहे क्यो रस भरे अनुराग दुख से ग्रसित मेरे
आज तो इतनी सुनाउंगा थकाउंगा सुनाता (नचाता) । यदि आपका .....

3. केश मानवता के निशि दिन इधर कोरव खींचते है ।
तज सुदर्शन उधर, राधा प्यार से मन सीचतें है ।
जब अहिंसक मनुज शोणित दनुज नित्य उलीचते हैं ।
देव वंशज इधर दायित्वों से आंखे मीचते है ।
मै उन निराशा वादियों को त्यागता, यदि जान जाता ।
(मैं) न कोई गीत गाता, आपकी सुनता न मेरी कुछ सुनाता ।
चार छन्दों के सहित् यदि आपका सानिध्य पाता ।

4. आज युग कवि लेखनी से, मांग क्षण–क्षण कर रहा है ।
शांति की पावन धरा में क्रान्ति कण–कण कर रहा है ।
मूक होना कर्णधारों, के लिये शोभा नहीं है ।
मातृभाषा ऋण चुकाने का उचित अवसर यहीं है ।
ज्ञान जल कवि मेघ ढ़ोते और इधर सूखी महीं है ।
सृजन का देकर निमंत्रण, नींद से तुमको जगाता ।
चार छन्दों के सहित् यदि आपका सानिध्य पाता ।

.....

भ छबड़ा नगरी के प्रति रचना

रचयिता भ मंगल भ रचनाकाल – सन् 1974

स्वर्गराज की तू महारानी, तेरे हरियाले आंचल की महिमा किससे
जाय बखानी प्रबुंध वर्ग की बुद्वि धकानी, स्वर्गराज की तू महारानी ।

1. स्वागत में हर आगनतुक के उत्सुक हैं वे दोनों भाई ।

एक डाक बंगला दूजे ने पर्वत ऊपर मंच लगायी ।

बूढ़ी चाची अलीगंज की तू ने दो पति नए बनाए ।
नगरपालिका, छात्रपालिका, अपने दो नव नाम धराये ।

परिचारिका नई अग्रागोदी में सब पाहुने सूलाये ।
चर्चा मधुर–मधुर गुण खानी, नित नव वर की जोड़ मिलानी ।। स्वर्गराज की

2. चारों तरफ खींचा परकोटा चार द्वार दो खिड़की आजा ।
म्याल घाट से स्टेचन तक रोड़ तीन चौपाटीवाला ।

एक छोर पर अमृत बहता दूजे पर ढुलती है हाला ।
बोली में मिठास गाली का इस छबड़े का ढ़र्र निराला ।

अलबली मालन चौपड़ पर ही गूंध रही गजरे और माल
मंहकी सी फूलों की देवी देख किसी की मति बौरानी । स्वर्गराज की तू महारानी

3. जनकराज आराम्य, रम्य से आठ बाग कितने मद माते ।
आठ–आठ से एक–एक चौसठ बगियों से प्रेम निभाते ।

अमृत जैसे फल मेवे खुद चख–चख सबके घर पहुंचाते ।
आम, सन्तरे, नीबू, कमरख, बाहर, भिजुवा दान लुटाते।
मंदिर, मठ, गुरुद्वारा, मस्जिद अपनी धुन में ध्यान लगाते ।
जितने चट्टे –बट्टे उनके करना सब से प्रेम सिखाते ।
पहरेदार प्रांत सीमा की, चेखावत की सगी मुमानी ।। स्वर्गराज की तू महारानी

4. चरणों में गंगा की बेटी सगी रेणुका जी बइती है ।
सदा एक रस, निर्मल, अविरल ध्यान मग्न कल–कल बहती है ।
ह्विंदु हो या मुसलमान, मन मेल, ताप सबके सहती है ।
कान लगाओ सुने कोई पल–पल उसकी लहरें कहती है ।
आर्चीवाद मोड़ खेतों में ले जाओ खुचियां बहती है ।
बच्चे –बूढ़े क्या जवान वह सबकी है नानी की नानी । स्वर्गराज की तू महारानी,

मस्तक पर है किला मुकुट सदियों से रक्षा करता आया।
चत–चत बन्दी मेहमानों को जो विश्राम सदा दे पाया ।
कितनी तोपों की दहाड़ से दिल जिसका न कभी थर्राया ।

इंगलियां, खींची, नवाबों का बैठे–बैठे किया सफाया ।
कठिन मोड़ से निकल दौड़ में उछल लोक चासन ले आया ।
लिया बुर्ज में अब तिरंग बन बैठा छबड़े का सेनानी ।
स्वर्गराज की तू महारानी,

5. न्यायालय न्याय कर रहे नगरपालिका नगर सजाये ।
किंतु हाय दसवी से आगे बच्चों का जीवन रुक जाये ।

झूठे–वादे दस–दस करके हार पहनकर पेड़े खाये
धोखे दिये छात्रों से जिन्दाबादी नारे लगवाये ।
दूर रहा कालेज अरे ग्यारवीं तक भी खुला न पाये ।
बदला दल जब लज्जा आई ढूंढ रहे अब चुल्ला पानी ।। स्वर्गराज की तू महारानी,
तेरे हरियाले आंचल की महिमा किससे जाय बखानी । स्वर्गराज की तू महारानी,

तेरे हरियाले आंचल की महिमा किससे जाय बखानी।
स्वर्गराज की तू महारानी,

देय प्रेम – कविता ब्रज भाषा
रचयिता भ मंगल भ
रचनाकाल सन् – 1974

तुक्कड़ बताके मोहि हुटिंग लगवाके ।

चाहे अब प्रसन्न व्हैके मेरी कविता परिपाटी सौं ।
हाथ बंधवा के पांव बेडियां भराके जैल खानें भिजवाके ।
सीधे छबड़ा चौपाटी सौं ।
विष भी पिलाके मोहि नाग से डसाके ।
कारिख म्हों पे पुतवा के फेकों चाहे तीखी की घाटी सौं ।
कोड़े लगवाके चाहे गोली से उड़ा दो किंतु सकोगे न छुड़ा प्रीत
भारत की माटी सौं ।

महर्षि दयानन्द के प्रति

रचयिता – भमंगल

रचना काल – दिनांक 22.3.1966

ओ लोह पुरुङ्ख ओ आर्य वीर। ।।

1. जन मन उपवन में दर्शन की अभिलाषाओं के खिले फूल ।
क्या दया तुम्हारी यहीं, आज हम याद करें तुम गयें भूल ।
चालीस कोटि झौलियां बिछी क्या मिलान सकेगी चरण धूल ।
ओ योगी राज उतरों, फूलों मे बन सुगन्धि प्यारे फकीर ।। ओ लोह ।।

2. लग जाय पुन रू आसन तेरा, है खंला द्वार खाली कुटीर ।
जन– जन मन– मन अब पीड़ित है क्या अब न करोगे दूर पीर
पतितों का काया कल्प करों, उस दिव्य ज्ञान से धीर वीर ।
आवाज दे रहा आर्य वंच को, आर्य वर्त का काश्मीर ।। ओ लोह ।।

3. जिसके बलशाली हाथों से घातक तलवारें टूटी थी ।
ललकार सुनी जब रिक्ष राज ने उसकी जीवन आशा छूटी थी ।
ईटों के बदले में लड्डू वितरण यह बात अनुठी थी ।
विषदाई जगन्नाथ को देकर प्राण दान खींची लकीर ।। ओ लोह ।।

....

ईश्वर का निवास कवित

कोई समझता क्षीर सागर में लेटें है, थके मांदे कमला जी से पॉव दबवाते है ।
ब्रह्म लोक, गो लोक, स्वर्ग को तलाचें कोई आसमान चौथे से टेर कर बुलाते है ।
सातवें गगन पर मकां कोई कहते और ऊँचे हाथ कर–कर जैसे नौता भिजवाते है ।
सच्चे चिव बोजी देव दयानन्द वेदों बोले घोषणा कर प्रभु को सर्व व्यापी बताते है ।

कोई मथुरा में कोई अयोध्या में जन्म मान, पलनों में झुला–झुला करलोरिया गाते है ।
कन्या कुंवारी के गर्भ से ही पैदा होना मान कोई अनहोनी घटना सुनाते है ।
खम्बे को चीर कोई सिंह ज्यो बुलाते कोई कच्छप और मछली के पेट से उगाते है ।
सच्चे चिव खोजी देव ड़के की चोट कहा सर्व व्यापी प्रभु केवल अजन्मा कहाते है । कहीं
आते है न जाते है ।

रचयिता – भमंगल रचना काल – दिनांक 1965

राष्ठीय

इतिहास भी करवट बदलेगा

खर्राटे बहुत लिए उसने भारत में शांति की शय्या पर ।
आलस्य निशा बीती, होगी अब सैर, क्रांति की नैया पर ।

केवल जीवन का दान नहीं हर बलिदानी कर पायेगा ।
हो स्वयं अमर कर अमर इसे स्वर्णिम अक्षर जड़ जायेगा ।
भारत ही क्या संसार तेरे चरणों में वंदन करलेगा ।इतिहास भी रू

2. जिस देश का छोटा सा बालक नागेश को नाच नचाता है ।
जिस देश का केवल बनवासी रिपु सेना मार भगाता है ।

जिस देश का केवल एक– एक वीर रिपु की चौकियां छिनाता है ।
जिस भूमि का वह प्रण वीर अंत में तीरों पे सेज बिछाता है ।
चालीस कोटि उसके सपूत, बैरी क्या बच कर निकलेगा । इतिहास भी रू

3. दो आब, जहां गंगा–यमुना का अविरल अमृत रहता है ।
सुन्दर सुस्वादु उपजाऊ मीठा सलिल सुधा सम बहता है ।

भूरी, पीली, बलुआ, वाली, धामनी, माल, मिट्टी काली ।
शत्रुओं जलो मत देख इसे यह कुएं झील नहरों वाली ।
अरे अब मारवाड़ की बालू तक का कण –कण मण–मण निपजेगा । इतिहास भी

4. यह देश गरुड़ बनकर सपोलिये पाक तुझे खा जायेगा ।
ओ कीट चीन, इस ज्वाला में अपना तन ही झुलसायेगा ।

ओ मूर्ख यादकर रामबाण से हमने नेट बनाये है ।
पेटन, सेवर, कर तहस–नहस वापिस तरकस में आये हैं ।
अब युद्व छिड़ा तो तिरंगा लाहोर दुर्ग पे फहरेगा। इतिहास भी ।

5. अब हनुमान अब मेघसिंह लाखों है आग लगा देंगे ।
अब आचाराम कोटि अर्जुन, कौरव को दास बना लेंगे ।

जब सागर पाट सके थे हम, तो बेचारी क्या इच्छोगिल ।
रे चत्रु भाग लें, जान बचा, हम जीना कर देंगे मुश्किल ।
हिम गिरि के सिर हम लिखदेंगे, चीनी पाकी अंतिम लेखा ।
इतिहास भी करवट बदलेगा

रचयिता भमंगल रचना काल सन् 1971
रचना स्थान –अटरु भाषा हाड़ौती

नोट रू. लक्ष्मण जी की पत्नी उर्मिला पाकिस्तान से युद्व के समय
अपने सहेली से युद्व के समाचार सुनकर कल्पना द्वारा उत्तर देती है ।
राम बनवास के बाद भ जे तू फेली आई होती भ
महूँ प्राणनाथ न बरज राखती, थे सूँ बतलाई होती । जे तू फेली रू

1. या म्हारी बारी उम्मर यों एकांकी जीवन थड़फे छे ।
वे फुर्ति सूँ जाबा लाग्या, म्हारों भी हर दों फाटे छो
यां ऊँचों – ऊचों म्हेल मने जद मूंड़ों बायां काठें छो ।
पण लोक लाज का तन मन पें आख्यां पे पहरा बैठ गिया ।
म्हूं चरण धूल भी ले न सकी वे अण बोली ने छोड़ग्या ।
अरी भाभीजी जनक दुलारी की सेवा ही समलाई होती । जे तू फेली आई होती,
म्हुं प्राणनाथ ने बरज राखती, थें सूं बतलाई होती ।

ऊं दिन वृक्षां ने मौन साध, पक्ष्यां की जीभां भी सीं दी ।
अब रॉड़ मोरड़ी कूंक –कूंक रग–रग म्हारी छाती बींधी ।
ये सूरज चॉद तारकावलि सब ठेड़ा–ठेड़ा घूर रिया ।
बीरां से थांकों ओसर छे, म्हूं अबला छूं, वे दूर गिया ।
अरी ऊं कोयल से ही खें देती वाफेली कूकाई होती ।

जे जे तू फेली आई होती ।
म्हूं जीवन धन ने बरज राखती, थें सूं बतलाई होती ।

3. वे ई बगतां की होता तो भ याह्या की जीभ ऐंच लेता ।
(अर) धनुष नोंक सूं बंगला के फेलाडी रेख खेंच देता । फेलाडी
म्हूं लारां जाती सीमा पें बंगला ने सोत बना लाती ।
वे नटता तो भी आर्य वीर ने बंगला देच्ची परणाती ।
जेठ जी अकेला ही रावण को खटको मेट माट देता ।
म्हारा प्राणेच्च सुभाङ्ख वीर ने पाकिस्तान तिलक देता ।
युवकां का मंगल प्राणां मे बिजली सी दौड़ाई होती ।
संगीना सम्भलाई होती जे तू फेली आई होती ।
म्हूं प्राणनाथ ने बरज राखती, थें सूं बतलाई होती ।

नोट रू. निर्वाण अवसर दीपावली के उपलक्षय मे एक समारोह में रचना सुनाई गई
रचनाकार भ मंगल रचना काल 8 नवम्बर, 1986
रचना स्थान – अमेरिका ।

कविता

1. अन्ध विश्वासों के अन्धेरे को दूर भगा, असंख्य ज्ञानदीपों से प्रकाश फैलाया था ।
कार्तिक अमावस्या के तम में विलीन होने आर्य कूल भूषण देव दयानन्द आया था ।
इतिहास साक्षी है अनार्यों ने लालच में, मंदिर तुड़वायें और मान घटवाया था ।
शत्रुओं का साथ दिया, स्वयं विधर्मी बनें, महा–महा पुरुषों का अंत करवाया था ।
ऐसा ही दुष्कर्म भजगन्नाथ कर बैठा, लालच में गुरुवर को ज़हर पिलवाया था ।
किंतु उस योगी ने पापी को क्षमा कर, ऊपर से धन देकर प्राण बचवाया था ।
धन्य उस योगी की जननी को बार बार, जिसकी महान कोंखें ने ही ऐसा लाल पाया था ।
स्वर्ग भी निहाल हुआ पाकर उस विभूति को, बोला ऐसा सन्यासी कभी नहीं आया था ।
कार्तिक अमावस्या के तम में विलीन होने, आर्य कुल भूषण देव दयानन्द आया था ।

2. सहस्त्रों देव दानवों ने मंथन कर एक सिन्धु, चौदह रत्न ढूँढ़े, केवल इतनी सी बात की ।
ष्षि ने हज़ारों ग्रंथ मथकर निचोड़ा रस, पिलाया, ऊँच–नीच भूला, तारे महापात की ।
नीलकण्ठ चंकर ने एक बार विष पीकर थोड़े से देवों की रक्षा की बात की ।
तेरह बार गरल पीकर महर्ड्डि ने अमृत दिया, करोड़ों को जगाया, अत्यंत रक्षा की
नारी जाति की ।
वेदों का लुप्त ज्ञान खोलकर प्रकाच्य किया, ईश्वर उपासना का रहस्य समझाया था ।
कार्तिक अमावस्या के तम में विलीन होने आर्य कुल भूङ्खण देव दयानन्द आया था ।

3. अमर चहीद, योगी की आत्मा जगाती हमें, दीपों के प्रकाच्य द्वारा प्रेरणायें पायें हम।
देच्य– देच्य, घन–घर में, जन–जन के मानस में, वेदों का ज्ञान दीप लेकर जलायें हम ।
यम नियम, आसन प्रणायम ध्यान करें ईश्वर से मित्रता का रिश्ता बनायें हम ।
माता और बहिनों को पत्नी और बच्चों को संध्या का दैनिक अभ्यास करवायें हम ।
बने हम सच्चे आर्य, ऋषि को मिली यदि चांति, तब समझों कर्तव्य अपना निभाया था ।
कार्तिक अमावस्या के तम में विलीन हाने आर्य कुल भूषण देव दयानन्द आया था ।

रक्षाबंधन
रचयिता भमंगल
रचनाकाल – दिनांक 8.8.79

ममता का त्यौहार किन्तु संदेश अनोखा लाया है ।
राखी के तारों के भीतर अमित रहस्य समाया है ।

1. राखी के तारों में डूबा धूल भरा भोला संसार ।
कभी खेलना, करुण रूदन, दे पुनरू तोतला प्यार ।
इसी बहिन की पिछली बातें सरल सौम्य आंसू की धार ।
तरुण नयन, ले अरुण चुनौती, सुना रहे संदेश हज़ार ।
रोली अक्षत पुष्प आरती, बीच थाल में जमी कटार ।
भाभी से लो विदा वीर, रण में जाने को हो तैयार ।
दयानन्द की यज्ञ वेदिका जगा रही ले धूम अपार ।
अरे वीर की जन्म भूमि तक, बैरी की पहुँची ललकार ।
अरि मर्दन की शुभ बेला में मैने तुझे जगाया है । राखी के तारों के भीतर

2. उधर क्षितिज के पास किसी ने घातक ज्योति जगाई है ।
इधर कुर्सियों के चेहरों पर रूप बहुलता छाई है ।
रंग बदले पानी की गागर श्रावणियां भर लाई है ।
सेवा की धरती पर अब तो स्वार्थ घास उग आई है ।
फूट त्याग, संगठित यात्रा, का संदेश पठाया है । राखी के तारों के भीतर

रक्षा बन्धन पर बहन का भाई को देश प्रेम का संदेश

यह भी मुझे स्वीकार है

1. भर–भर कलश लाया करूँ, तेरे ही गुण गाया करूँ,,
संसार हो मैका पिया के गांव ना जाया करूँ, ।
संगीन दोनों राखियों के हाथ में तू थाम लें यह भी मुझे स्वीकार है ।

2. इन राखियों के तार में रिपु शीश की माला बनाना ।
तू ना अगर आ पाये तो संदेश ही जै का पठाना ।
आजन्म जी सकती हूं मैं निर्बन्धु केवल नाम ले ।यह भी मुझे स्वीकार है

रचयिता भमंगल सामान्य श्रृंगार रस
रचनाकाल – दिनांक 22.10.1959
रचना स्थान – ग्रामसेवक ०निंग सेन्टर, देवली

नोटरू. अर्जुन के साथ युद्व में जब कर्ण के रथ का चक्र कीचड़ में थंस गया । और श्री कृष्ण ने अर्जुन को सावधान किया । कर्ण कह चुका था कि भ मैं चक्र निकाल रहा हूं मुझ पर वार करना अधर्म होगा धर्म की दुहाई देने पर श्री कृष्ण ने कहा । प्रायेण नीचा व्यसनेषु मग्ना, निन्दन्ति दैवं, कुकृतं न तु स्वयं भ

अर्थ रू. जो पामर होते है वे बुरे व्यसनों में फंस कर कुकर्म किये जाते है और संकट पड़ने पर कुकर्मा को याद न कर देव की निन्दा करते है, कोसते है । इसी पर श्री कृष्ण ने कहा – तब तुम्हारा धर्म कहां गया था इसी पर एक गीत – रचनाकार ''मंगल''

1. आई तो तुझे याद धर्म की बहुत देर से आई ।
अगर याद पहले आ जाती होती नहीं लड़ाई ।
धर्म कहां था धर्म राज को जुआं में उलझाया ।
राज और परिवार पाण्डु का, चकुनी से हरवाया ।
जुएंबाज चकुनी द्वारा कौरव की जीत करायी ।
अगर याद तब ही आ जाती होती नहीं लड़ाई ।

2. याद करो जब भीमसेन को, सांपों से डसवाया ।
जहरीला भोजन देकर चाहा उसको मरवाया ।

तब तू भूला धर्म और अब देता धर्म दुहाई ।
आगर याद तब ही आ जाती होती नहीं लड़ाई ।

3. कहां धर्म बनवास बाद, पाण्डव का राज्य दबाया ।
तेरे होते दुर्योधन कोरा अंगुष्ठ दिखाया ।
पांच गांव क्या सूई नौक भूमी की करी मनाई । अगर याद तब ही आ जाती होती नहीं लड़ाई ।

4. याद न आया धर्म तुझे जब लाक्षागृह बनवाया ।
पांचों पाण्डव को परिवार सहित उसमें बसवाया ।
तू चुप क्यों था, जब उनके सोते में आग लगाई । अगर याद तब ही आ जाती होती नहीं लड़ाई ।

5. भरी सभा में अबला नारी. केच पकड़ मंगवाई ।
नग्न किया चाहा उसको साड़ी तन की खिचवाई।
जब अन्याय पी गया तू, अबला की हंसी उड़ाई । अगर याद तब ही आ जाती होती नहीं लड़ाई ।

6. सात महारथियों ने धोखे से अभिमन्यु घेरा ।
पीछे से उसका धनु काटा, यही धर्म था तेरा घ
धर्म यही था घायल बालक की हत्या करवाई । अगर याद तब ही आ जाती होती नहीं लड़ाई ।

नोट – किसी भी धार्मिक सभा में रचनाकार का यह भजन गाया जा सकता है ।

.....

रक्षाबंधन

रचयिता भमंगल

रचनाकाल – दिनांक 29.8.1958 तथा 8.8.79

भनेह के बंधन को लेकर मिलन का त्यौहार आया

1. थे प्रतीक्षा में हृदय दो, रक्त बाहों का उछलता ।
छबि सहोदर देखने को, था प्रति क्षण मन मचलता ।
आज पा अवसर सुनहरी, मिलन की लेकर विकलता ।
भरत सा आतुर मिलन की राम से, मन में विव्हलता ।
बहिन के आव्हान पर भाई चला पग–पग संभलता ।
लक्ष्य केवल या बहिन का स्नेह, पल–पल थी चपलता ।

मार्ग में पलकें साड़ी बिछी थी, जो बहिन का द्वार आया । निह के बंधन ।।

2. बांध कर रक्षा का बंधन, आरती कर, कर युगल से
प्रेम के आंसु की लड़िया थी बिखेरी दृग युगल से ।
कह उठी देना अगरा बदले में कुछ उपहार त ुम को ।
विश्व के सारे खजाने दो भी तो बेकार मुझको ।

तार राखी का बहिन की लाज दायित्व लाया । नेह के बंधन

3. तार राखी के कलाई से बंधे जब तक रहेंगे ।
हाथ में तलवार के कब्जे कसे तब तक रहेंगे ।
आर्य भू के शत्रु भय से भीत हो तुझ से कहेंगे ।
प्राण संकट में हमारे अब चरण किसकी गहेंगे ।
(अरे) वीर की राखी हमारे कफ़न का अम्बार लाया ।नेह के बंधन

4. मैं उसी भाई को राखी बांधकर संतुष्ट हूंगी ।
जो वतन के काम आयेगा , न उस से रूष्ट हूंगी ।
वही मेरा बंधु, उसकी ही बहिन मैं हो सकूंगी ।
बांध राखी हाथ में, दे खड़ग यह वरदान लूंगी ।
वीर भाइ की प्रतिज्ञा बस यहीं पहले सुनॅूगी ।

(क्या) आर्य मां की भेंट, राखी मूल्य में मस्तक चढ़ाया । नेह के बंधन ।

भआर्य समाज के प्रति'' दयानन्द के प्रति

भआर्य वीरों लगी है आग बुझाओ दौड़ो ।
झूठ पाखंड का पिनाक उठाओ तोड़ो ।
स्वयिता भमंगल रचनाकाल अप्रेल 1991

1. वेद की चार नीतियां जगाने था आया ।
अन्ध विश्वास होलियां जलाने था आया ।

असत्य ज्ञान के गिरि श्रृंग ढ़हाये उसने ।
अनार्य चीय आर्य मग में झुकाये उसने ।

किंतु हा देव दो मचाल ही जला पाया ।
मृत्यु संदेच कण्ड से किसी ने पहुंचाया ।

अधूरे स्वप्नों की लड़ियों को जुड़ाओ जोड़ो ।
आर्य वीरों लगी है आग बुझाओ दौड़ो ।

2. तेरी वाणी में वेद चंख नाद गुंजित है ।
सत्य का सिंधु तेरे रक्त में प्रवाहित है ।

कर्म करने की ललक हृदय में उमंगित है ।
तेरी अपार चक्तियों से पाप कम्पित है ।

लाखों पांचालियों के केच खींचे जाते है ।
सहस्त्रों साध्वियों के मान बिके जाते है ।

आर्य गज डूब रहा चक्र उठाओ दौड़ो ।
झूठ पाखण्ड का पिनाक उठाओ तोड़ो ।

आर्य समाज
ईश्वर सर्वव्यापी ''राग देच''
रचयिता मंगल रचनाकाल 1988

मंदिर या मस्जिद गुरुद्वारे या मजारों में ।
ब्रह्म पाना कठिन है पर्वत गुफाओं में ।

झर–झर में निर्झर में , ताल या तलैयों में ।
मिलना आसान ब्रह्म नहीं सरिताओं में ।

ऊँचे स्वर पुकारो या पृथ्वी गगन छान मारो ।
ढूण्ढो चाहे तरु त्रण में वृक्षों की लताओं में ।

ब्रह्म ज्ञान दर्चन जो करना तुम चाहो तो
डुबकी लगाओ वेद सिन्धु की ऋचाओं में ।

रचनाकार श्री बालकृष्ण त्रिवेदी
<u>उच्च स्वर में आज हिमगिरि गा रहा है</u>

फिर किसी चंगेज की नजरें उठी इस सर जमी पर ।
फिर कोई महमूद उत्तर की दिशा से जा रहा है ।। हिमगिरि गा रहा :

1. मां बहिन के मान का दायित्व भारी हो चुका है ।
देच के सम्मान का भी प्रश्न सन्मुख आ खड़ा है ।
बिक रहीं जाकर विदेचों में हमारी बेटियां हा ।

कौम के अब इम्तिहां का वक्त सिर पर आ पड़ा है ।
बाहरी पानी न रुक जाये कहीं बेडे में तेरे।
वक्त तूफ़ानी से पहले सिंधु नद समझा रहा है । फिर कोई मेहमूद ।

2. हार खाकर वह गयी है अब सहनशक्ति हमारी ।
अब अहिंसा नीति ने की रुक बदलने की तैयारी ।
शांति के यद्यपि उपासक, टलन पाये युद्ध यदि तो ।
युद्ध को सौभाग्य समझें है यहां रीति हमारी ।
देश के पुत्रों कलंकित हो न जायें आन अपनी।
विश्व का इतिहास पिछले पाठ फिर दोहरा रहा है । फिर कोई मेहमूद

3. कह न दे कोई की आज़ादी हमें प्यारी नहीं है ।
कह न दे कोई हमारी पूर्ण तैयारी नहीं है ।
कह न दे कोई हुकूमत से हमें यारी नहीं है ।
कह न दे भारत तो आज़ादी का अधिकारी नहीं है ।
इसलिए हिम चेल पर बलिदान की वेदी बनाओं ।
आज चंकर का सरोवर नष्ट होने जा रहा है ।
फिर किसी चंगेज की नज़रें उठी इस सर ज़मीन पर ।
फिर कोई मेहमूद उत्तर की दिया से आ रहा है ।

अंतर कथायें – कविता भ जीवन की विषम पहेली में रचना दिनांक 20.10.54 के अंतरा नंबर–4 तथा 5 की ।

<u>अंतरा नंबर–4 की</u>

सन् 1951 में मैं अपने मित्र के साथ इंद्रगढ़ से ब्रज में घूमने चला गया । इंद्रगढ़ में मकान वालों के एक गाय थी उसके साथ एक बड़ी बछड़ी थी और गाय गर्भवती थी । जिस दिन हम गये हमको मकान में नजर नहीं आयी चायद वह नीचे की मंजिल में भूसे के भंडार में होगी । इस तरह मकान में बंद रह गयी हम ताला लगाकर गये और चाबी पड़ौसी को दे गये । मेरा मित्र एक हफ्ते बाद बृज से लौटकर इंद्रगढ़ आ गया और मुझे पत्र लिखा कि अपन उस मकान में गाय बंद करके चले गये । ज्यों ही दस दिन बाद वह पत्र मिला मेरे होच उड़ गये, समझा कि निश्चित वह मर चुकी होगी तुरंत किसी प्रकार चलकर इंद्रगढ़ आया तो देखा कि गाय मुझे मारने दौड़ी। हुआ यह था कि एक सप्ताह बाद मकानवाले कोटा से आये होंगे और गाय को चौक में पड़ी देखी, मरी नहीं थी परंतु हालत खराब बतायी । जब उन्होंने चारा पानी किया तो वह ठीक हो गयी । इस बात को लेकर मैंने अपनी कविता में नंबर–4 पर लिखा रू

वह समय नहीं भूलूंगा मैं था किया दया का कोष दान,
गौ गर्भवती बछड़ी समेत प्यासी सप्ताह भर रखे प्राण ।
मैं बृज रज में उन्मत्त वहां गोपाल यहां गौ पाली थी ।
मैं भूला तुम रखते न याद तो क्या वह बचने वाली थी ।
है सत्य करी रक्षा भारू ही के अण्डों की बृजकैली ने ।
जीवन की विषम पहेली में

<u>अंतरा नंबर–5 की</u>

सन् 1945 में मैं पटवारी था अपने सर्किल के गॉव कोटड़ा मेघनाद से चलकर घोड़े पर छबड़ा से दो मील दूर तक आया तो देखा कि वर्ड्डा खूब हो चुकी थी । एक तरफ से नाला और एक तरफा नदी दोनो उफान पर थे मिल रहे थे । मेरा उनको पार कर आना कठिन हो गया । मैं चकित रह गया मेरे पास टार्च भी नहीं थी । घोड़े पर पटवारगिरि के बस्ते बंधे हुए थे । बहुत परेचान हो कर ईश्वर को याद किया तक देखा कि सामने से उस रात्री के धुंधले में छबड़ा की तरफ से कोई व्यक्ति आ रहा है । उसके सिर पर चरसा था एक बैल आगे और एक पीछे चले आये मेरे सामने की किनारे के पास आकर अचानक बिना पूछे उस व्यक्ति ने मुझसे कहा भैया जी इधर से आ जाओ उत्तर की तरफ हाथ का इचारा किया । बस क्या था डूबते को तिनके का सहारा, मैंने बिना खतरे की परवाह किये घोड़े के एंड़ लगाई और नाला तैर कर इस पार आ खड़ा हुआ । जब मैंने सामने देखा तो वहां कोई नहीं था न बैल थे और न ही कोई आदमी था । मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ और इस ईश्वर की कृपा पर कुछ देर तक वहीं खड़ा रहा इसी बात को लेकर मैने अपनी कविता जीवन की विषम पहेली में के अंतरा नंबर –5 में इस घटना का निम्न प्रकार से वर्णन किया है ।

भनिरजर वर्ड्डा रजनी काली, सरिता, नाले का तरुणनाद।
सब ग्राम दूर उस पार खड़ा घोड़े पर तुमको किया याद ।
दस मिनट बाद स्वर्गीय दूत चर्सा धर बैलों मध्य चला ।
आया बिन पूछे मार्ग प्रदर्चन कर फिर अंर्तध्यान हुआ ।

चट दुरा भेद्य से पार हुआ, क्या थी न कृपा गज बैली में ।
जीवन की विड्डम पहेली में ।
——

अंतरा नंबर–6 में इस बात का वर्णन है कि मैं अस्पताल में भर्ती था ।
मेरे पास कोई सहायक नहीं था अचानक मेरे पिताश्री छबड़ा से वहाॅ पड़ुॅच गये और सभी दिनों तक मुझे सहारा देते रहे उसका वर्णन अपनी कविता में इस प्रकार किया है ।

पितु वचनों की सेवा तुमने की राज्य त्याग वन में जाकर ।
यहाॅ उलटी गंगा बहती है, पित वर से सेवा करवा कर ।
आदि–आदि

रचयिता भमंगल

रचनाकाल – दिनांक 20.10.54

भजीवन की विड्डम पहेली में'' – गुना हॉस्पिटल में भर्ती

1. परिलक्षित मंगल भानु रश्मि दुख दुराधर्ड्ढतम में होती ।
है उदर रोग तावरे साहब ने किस प्रदेय्य की जा सोची ।
भर्ती होने की बड़ी बड़ी कोच्चियें है निच्चि दिन भारी ।
करुणाकर की करणी असीम, जन प्रिय ने की आज्ञा जारी ।
होगा कल दिवस आपरेय्चन, भर्ती हो जाओ रखेली में । जीवन की विड्डम पहेली में ।

2. जीवन बदला, संसार नया, यह दृश्य न था जिसका की सपन ।
है एक हॉल, द्वादय्च पलंग ड़ौली बिस्तर जलके बरतन ।
मल मूत्र त्याग ओ पीक दान के डिब्बों का आवन जावन ।
रोगी कराहतें दम चलता खॉसी, नालों के पल क्रन्दन ।
ग्यारह नंबर की च्चैया ने कर लिया बिठा कर आलिंगन ।
पोच्चाक कैदियों सी पहनी, मंगल को हुआ आपरेय्चन ।
प्रतिकार नहीं आया मन में, देखा कटता खुद अपना तन ।
या तन की आज परीक्षा है भबोले कर लोगे कष्ट सहन
भय, आश्वासन, साहस ने मिल तन, सर ज्यों किया हथेली में । जीवन की..............

3. वापिस आया तन पीड़ित था, दो चीख मारना वहां पड़ी ।
यद्यपि साहस तो किया बहुत, वेदना किंतु अत्यन्त कड़ी ।
यदि हो, तो देखा नरक तुल्य यह रोष रव यहीं नसीब हुआ ।
या कारावास कहुँ तो फिर, परिणाम कौन करतूतों का ।
संतप्त हुआ हूॅ सभी भांति, जीवन चर्या अति मेली में । जीवन की................

4. वह समय नहीं भूलूंगा मैं, था किया दया का कोड्डदान ।
गौ, गर्भवती बछड़ी समेत, प्यासी सप्ताह भर रखे प्राण ।
मैं बृज रज में उन्मत्त वहां, गोंपाल यहां गोपाली थी ।
मैं भूला तुम रखते न याद, तो क्या वह बचनेवाली थी ।
है सत्य करी रक्षा, भारूहि के अण्डों की बृज केली ने । जीवन की................

5 निरजन वर्ड्ढा रजनी काली, सरिता, नाले, का तरुण नाद ।
सब ग्राम दूर उस पार खड़ा, घोड़े पर तुमको किया याद ।
दस मिनट बाद स्वर्गीय दूत, चरसा धर बैलों मध्य चला ।
आया बिन पूछे मार्ग प्रदर्च्चन कर फिर अर्न्तध्यान हुआ ।
चट दुरा भेध्य से पार हुआ, क्या थी न कृपा गज बेली में । जीवन की.............

6. पितु वचनों की सेवा तुमने की, राज्य त्याग वन में जाकर ।
यहां उलटी गंगा बहती है, पित वर से सेवा करवा कर ।
वह वरद हस्त फिर झुके ज़रा हृदय पसीज जावें फिर भी ।
हो जाऊॅ स्वस्थ भागे प्रमाद, तो भुला सकूॅ तुमको न कभी ।
यय्च वैभव सर्जन का चमके, ज्यों च्चरद चंद उजयेली में । जीवन की................

होली की महिला ;मुक्तकद्ध
रचयिता मंगल
रचनाकाल दिनांक 25.3.1986 भस्वर करुण स्वर

कितना प्यारा त्यौहार था होली ।
बालाओं के प्यार में भीगे हुए कोड़ों की मार ।
रंग और गुलाल के रूप में बरसता था प्यार ।
और बोली जाती थी मधुर–मधुर वेद मंत्रों की बोली ।
कितना प्यारा त्यौहार था होली ।

1. किन्तु ओ निठुरे, हिन्दु कहे जाने वाले आर्य वीर ।
तूने अब अपनी चैया के नीचे फिर खड़े कर लिये है तीर ।
अब पश्चिम और पूरब की गरम लू ।
जलाकर राख कर देने वाली बन चुकी है ।
वह पुरानी रंगीली चीतल समीर ।
अब देच और धर्म, भारतीय संस्कृति और आर्य कर्म ।
की रक्षा के झूठे अभिमान पर, आपसी सौहार्द के ।
स्थान पर अरे तूने अब तलवारें तौली घ
क्यों रंग गुलाल के मंच पर खेल रहा है अपने मां जाये भाईयों के खून से होली घ
यह कैसा बंधुत्व, कैसा विनोद, कैसा त्यौहार घ
और कैसी ठिठोली, जो पिचकारी के बजाये बंदूके बरसाती है गोली ।
बरसाती हैं गोली । वह कितना प्यारा त्यौहार था होली ।

2. श्याम ने राधा के अथवा राधा ने श्याम के ।
या बृजवासियों ने ही नहीं इस धरती के ।
सब बेटा बेटियों ने सदैव रसिकों के साथ ।
मिला मिलाकर छाती और हाथ ।
युगों युगों से होली पर की है ठिठोली,
बोल बोल रसीली बोली ।
आज तो मेरी ही नहीं मेरी सहस्त्रों बहिनों की मांग की पुंछ गयी है रोली ।
जिससे देख–देखकर ओ सिर फिरे दानवों ।
मानवों की आत्मायें भी रो ली ।
कितना प्यारा त्यौहार था होली ।

3. सभी प्रांतों और नगरों मे पहले भी मचती थी होली ।
और अभी मचाते है ।
गुजरात भुआ का पुतला जलाकर महाराष्ठ में होली के चारों और तलवारें घुमा–घुमा कर,
जैसे वीर मुक्तात्माओं को च्रांती पहुंचाते है ।
बरसाने और नंद गॉव में और सारे बृज में संगीत गुंजाकर
फगवें मांग, लाठियां नचाते गाते, ढप बजाते है ।
महावीर जी में रंग बिरंगी मीठी गालियां लाठिंया और बाड़मेर में तो छतों पर पत्थर
फेंक–फेंक कर भी आनंद लुटाते है ।
अरे बंगाल और राजस्थान में भड़कीली, चमकीली, हुड़दंगी पोच्याक पहनाकर रसिया की,
गधे पर सवारी भी सजाते है ।
पर हाय साथ ही आज मेरठ से पंजाब और पंजाब से काश्मीर ।
काश्मीर से असम और दिल्ली के दिल को भी चीर, इस मॉ के सीने पर जवान निरपराध
पुत्रों को दूध बजाय रक्त मिलाकर सुलाते है ।
अरे राक्षसों , तुमने राक्षसी और भयावनी बना दी मेरी रंगीनी चोली ।
कितना प्यारा त्यौहार था होली ।

4. अब गुरुद्वारों में होली पर चंदन नहीं ।
नहीं वहॉ रक्त और क्रंदन बहता है ।
पूजा के वस्त्रों का नहीं, च्रस्त्रों का अम्बार रहता है ।
ग्रंथियों और संतों के अंत होते है,
मात् विहीन होकर, इकलौते बच्चे भी भूखे प्यासे रोते है ।
च्रिष्यों में गुरु का सम्मान या ज्ञान नहीं है ।
अपने और पराये की पहचान नहीं है ।
च्रत्रुओं को मित्र और पूर्वजों से अब तक के मित्रों को च्रत्रु मानना क्या अज्ञान नहीं है ।
जिस धर्म के लिये गुरुजी ने दो लाड़लों को चिनाया दीवार में ।
गुरु तेगबहादुर च्रहीद हुए, कश्मीरी पंडित जब बह रहे थे विधर्म की धार में ।
अरे सच पूछो तो हमने अब गुरुजी की च्रान, मर्यादा और मान, त्याग, धैर्य उपकार,
धर्म और संस्कार सहानुभूति और दयानुभूति, सब की सब चुल्लू भर पानी में डुबोली ।
ऐसी मनाते है हम अब होली ।
कितना प्यारा त्यौहार था होली ।
बालाओं के प्यार में भीगे हुए कोड़ों की मार ।
रंग और गुलाल के रूप में बरसता था प्यार ।
और बोली जाती थी मधुर–मधुर वेद मंत्रों की बोली । कितना प्यारा त्यौहार था होली ।

भवोट की आत्मकथा
रचयिता भमंगल
रचनाकाल सन् 1986
भमेरा नाम है वोट

दुनिया में मेरी कहीं कीमत आंकी नहीं जा सकती । मेरा नाम है वोट ।

1. चाहे रूबल हो, क्वाचा हो, डालर हो, पौण्ड हो, या नोट ।
मूझे कौन नहीं जानता है, हिन्दु हो, मुस्लिम हो, इसाई या कोई हो ।
राजा हो, रंक हो, चोर हो, या साहूकार,चराबी, जुआरी, मूर्ख हो ।
या पंडित मेरी इज्जत को खूब मानता है ।
साधू हो या फकीर हो, गरीब हो, अमीर हो, लूला हो या लंगड़ा,
अंधा हो या बहरा स्वस्थ हो की रोगी, योगी हो कि भोगी ।
मरने ही वाला इो तो भी मुझे पहचानता है ।
मेरा नाम वोट है ।

2. पुरुङ्ख हो या महिला, बूढ़ा या जवान हो, दुबला हो छोटा हो,
अरे इतना अमीर मोटर हो, जिसके पांव में धूप में चलने से
फफ़ोले पड़ जाने का मुखोटा हो, वह भी मझे पाने की प्राण पण से ठानता है।
मेरा नाम वोट है ।

3. अंगूर को छीलकर खानेवालों, इन्सान को पचु से भी कम बतलानेवालों ।
मैं देवों का देव, मुझे पूजो और मनालो मेरा धर्म नहीं इमान नहीं ईश्वर ।
अल्लाह या भगवान नहीं
अरे तुममें से हर एक मेरी भीख मॉगता है मेरा नाम वोट है ।

4. मैं हॅसादूं, रुलादूं, मारदूं, जिलादूं, सिंहासन हिलादूं या
ताज पहिनादूं, चाहूं तो पालकी में बिठादूं
कभी जेल भी पहुंचादूं, इस पर भी मेरी कीमत क्या बता दूं ।
क्यो मुझे कोई केवल कागज़ का टुकड़ा मानता है ।
मेरा नाम वोट है ।

5. कसौटी में, एक्जामिनर हूं परीक्षक हूं ज्ञान का ।
बुद्धि की तुला हूं आपकी अकल की दुकान का ।
आप मुझे किसके नाम दोगे, लुटेरे को या त्यागी को ।
समाज सेवी इानी को या कसाई को, अनुरागी को ।
निरक्षर भट्टाचार्य को या डिग्रीधारी को, देच पर मिटनेवाले को ।

या गद्दार को, या अनाड़ी को, भाई को भतीजे को फूंफा या जीजे को ।
सजातीय, स्वधर्मी को, चरित्रवान या कुकर्मी को, मत देना चोर,
द्यूत कर्मी को, सट्टेबाज, मदिरा धर्मी को, मुड़कर न झाकनेवाले बेशर्मी को ।
अरे बचाना मेरी गरिमा की गरमी को मेरा नाम वोट है

6. मेरी ताकत से धनवान, कंगाल, निर्धन भी मालामाल हो उठता है,
गंगा उलटती है और हिमालय झुकता है, अरे कऊण्टिंग के समय तो ।
सूरज भी रिजल्ट सुनने को कुछ देर रुकता है, रात्री के तारे और चंद्रमां भी ।
मुझे जानता है मेरा नाम वोट है ।

7. वैसे मैं इतना रुमाल कि आप बना भी नहीं सकते, दस्ती रुमाल,
मुझे जलाओ तो सर्दी में हाथ नहीं सिकते, चाय मे मुझ से आता
नहीं उबाल, मैं खाने का न पीने का, जोड़ने का न सीने का ।
ओडने का न बिछाने का, और रिजल्ट के बाद तो कचरापात्र भी,
मुझे अपमानता है तो भी मेरा नाम वोट है ।

....

सर्वया बृज भाङ्का में
रचयिता मंगल
रचनाकाल सन् 1987

भकवि गोष्ठी पर उपस्थिति कम रहे तब
चंद छटा कुछ फीकी परी, जुगनु के प्रकाश भयो उजियारों ।
विद्धान को मान धरा में धस्यों अरु मूर्ख की शान को बाजे नगारो ।
उत नारी के नृत्य बरात जुरे, अरु नोटन को बहजात पनारो ।
साहित्य सभा जब जब्ब जुरे तब चार कवी अरु माईकवारों ।

हास्य चुटकुला

प्रेमी और प्रेमिका जब शौपिंग को निकले तो श्रीमती ने कमियों की मांग यूं बयान की ।
रचयिता मंगल
रचनाकाल सन् 1987
प्रेमी और प्रेमिका जब शौपिंग को निकले तो श्रीमती ने कमियों
की मांग यूं बयान की ।
मेरे पास साड़ी का बार्डर है साड़ी नहीं शीशी है इत्र का तो नाम और
निशान नहीं, अंगुटी है ऊंगली की, नेकलेस बिना जचती नहीं, पान है
शौक मगर घर में पान–दान नहीं ।
साहब ने फरमाया भई मेरी भी यहीं हालत है
मेरे पास जेब है मगर उसमें एक भी दाम नहीं है ।

रचयिता – भमंगल
रचनाकाल सन् 1952–53

पटवारी को चेतावनी
जागे पटवारी एक बार

झुक–झुक कर कमर झुकी तेरी अब तो कुछ सीने को उभार ।

1. सदियों से तू बदनाम रहा, केवल लिखना ही काम रहा ।
तनमन से सही गुलाम रहा अपने मुख दिये लगाम रहा ।
तो भी दुर्लभ आराम रहा, दयनीय दया अपनी निहार ।
जागे पटवारी एक बार

2. जीवन में जो त्रासक आये, वे खूब तपे या गरमायें ।
दिन रात काम ही काम लिया, कागज़ के बादल बरसाये ।
तेरे जीवन का किंतु कभी अध्ययन नहीं कर पाये ।
थोड़े वेतन में किस प्रकार पलते होंगे इसके कुमार ।
जागे पटवारी एक बार ।

3. तनख्वा कम तू ही लेता है हर चन्दा तू ही देता है ।
बेगारें तू ही सहता है, अनुचित आतंकित रहता है ।
पर मुख से कभी न कहता है, जग में तू ही इतना उदार ।
जागे पटवारी एक बार ।

4. अपनी हस्ती को भूल गया, तू है त्रासन का कर्ण धार ।
खाली रह जाये कोड्ड सभी, यदि तू रूठे बस एक बार ।
त्रासन की जड़ और बीज तू ही, युग–युग का सिंचक तू उदार ।
रे अन्नदान देता सबको, कायम कर रखे रोज़गार ।
बिना मांगे कभी न मिलता है, अपने ऊपर कुछ तो विचार ।

5. तू आग लगादें अम्बर में तूफानी त्रासन से टकरा ।
तेरी साधारण ठोकर से डोले पहाड़ हिल जाय धरा ।
त्रासन का आसन दहल उठे उस आत्म त्रक्ति को थाम जरा ।
अनुभव कर अपनी ताकत का जिससे अब तक संसार डरा ।
यदि हिम्मत से जो काम लिया, जीवन में आयेगा निखार ।
जागे पटवारी एक बार ।

6. क्यों बोल बंद रे बोल जरा जगती जागी तू सोया है ।
यह जन्म सिद्ध आज़ाद जीव, अनुचित बंधन में खोया है ।
स्वच्छन्द वीर राणा प्रताप की क्या ऐसी संतान हुआ ।
जो हीन अवस्था अपनी कर पूर्वज का नाम डुबोया है ।
कर सिंह नाद ललकार उसे, जिसने अधिकार सुखोया है ।
ताना त्राही का मद उतार । जागे पटवारी एक बार ।

7. उनको चपरासी सात–सात और जमादार भी है तैयार ।
तेरा सहना भी लिया, बना तेरे बस्ते का तू अधार ।
कर रहा सफल तू पैदल ही, ले सफर खर्च वे बेचुमार ।
क्यों इतना हिम्मत गया हार ।
जागे पटवारी एक बार

8. थक गयी कलम या जुबां सिली जो रहता व्याकुल निराधार ।
कर आज प्रतिज्ञा तन–मन से, मौका है आज सुनहरी यह ।
हो जा तैयार बढ़ जा आगे रखदें मांगे कुछ मूंह से कह ।
हर समय गलत आज्ञाओं की तकलीफों को अब तो मत सह ।
देखना फिसलते मत जाना, कहता हूँ तुझ से बार–बार
जागे पटवारी एक बार

रचयिता – भमंगल
रचनाकाल चाहबाद सन् 1961
युवक को चेतावनी

1. चान प्रतिभावान या अभिमान तू है । इस पुनीत वसुन्धरा का मान तू है ।
आज उस पावन दिवस को हम मनाते यूं जवानी,
गर्भ में जिसके छिपीं लाखों अमर जीवन कहानी ।
हो गये बलिदान वे पर दे गये अविचल निचानी ।
खून की गाढ़ी कमाई मन लुटा, रख सावधानी ।
घात में है अब लुटेरे कोङ्ख का दरबान तू है ।
इस पुनीत वसुन्धरा का मान तू है ।

2. रे, प्रताब चिवा, तिलक, बापू सभी तुझको निहारे ।
स्वर्ग से भी झाँकते है रात दिन आंखें पसारे ।
कामना उनकी वहीं जिसके लिए सर्वस्व हारे ।
पुण्य भू खण्डित हूई पर लाज अब तेरे सहारे ।
स्मरण देता चुनौती विजय का सामान तू है ।
इस पुनीत वसुन्धरा का मान तू है ।

3. तू न कायर बन तेरे प्रति रोम बल सागर भरा है ।
साक्षी उत्साहले इतिहास तुझसे कह रहा है ।
तेरी ताकत से हमेचा विश्व विजयी भी डरा है ।
आज क्यों जननी लुटी जाती अखण्ड वसुन्धरा है ।
तू न केवल है जवानी, चक्ति तूफान तू है ।
इस पुनीत वसुन्धरा का मान तू है ।

4. त्याग अब आराम कर संकल्प कदमों को बढ़ा दें ।
मार्ग के तूफान पर्वत कुचल सागर में बहा दें ।
दुश्मनों के एक ही ललकार में इक्के छुडा दें ।
दुम दबाकर भाग जायेंगे जरा कौतुक दिखा दें
चरण चूमेगी, विजय के कण्ठ का मृदु गान तू है । इस पुनीत वसुन्धरा का मान तू है ।

रचयिता – ''मंगल''
रचना काल – दिनांक 27.1.1984
राष्ठीय रचना

श्वेत वृङ्खभ बन जाय भेड़िया वह खूंखार नहीं तो क्या है ।
जिसे देच से प्यार नहीं है वह गद्दार नहीं तो क्या है ।

1. चुनाव के वादों में भू–पर राम राज्य का चित्र दिखाया ।
गॉव–गॉव और गली–गली क्या घर–घर में जा अलख जगाया ।

महा त्याग की महा मूर्ति नेता जी की क्या कंचन काया ।
मात्र जीतने की विलंब है, समझो स्वर्ग उतर ही आया ।
अरे विजय दुंदभी सुनते ही दल बदल दूसरा स्वांग बनाया ।
अरे जन–मन वोटों के मूल्यों का सट्टा बाजार नहीं तो क्या है ।
जिसे देश्च से प्यार नहीं है वह गद्दार नहीं तो क्या है ।

2. निज संस्कृति से विमुख धर्म को त्याग किसी मठ के स्वामी है ।
जटा जूट और तिलक छाप, गांजा की चिलमों के हामी है ।
मानव के अमृत ज्ञान के दाता ने, बोतल धामी है
परदारेड्ढ मातृवत वालों के क्ंयज पर–त्रिय गामी है ।
अरे दयानन्द की पुण्य धरा पर कपटाचार नहीं तो क्या है ।।
जिसे देश्च से प्यार नहीं है वह गद्दार नहीं तो क्या है ।

3. कहीं दहेज ज्वाल झुलसाती कहीं लाज की लाज लुटाती ।
पग–पग गानों के हाथों अपना महता मान घटाती ।
अरे, बीस भुजाओं के मुख की ललकार जिसे दहला न सकी थी ।
अतुल च्चक्ति भी भरी सभा में जिसका तन उघरा न सकी थी ।
जब सड़कों पर, बस में, पिक्चर में टी.वी. पर, दफ्तर या क्लब में ।
नदी नॉव, नल, घट पनघट में मंदिर, मदिरालय में सब में ।
अरे उस मानव जननी का तन अब लुटता बाजार नहीं तो क्या है ।
जिसे देश्च से प्यार नहीं है वह गद्दार नहीं तो क्या है ।

4. फुटपातों पर मानवता का पेट पीठ से चिपक रहा है ।
उधर दानवी श्वान कार में दूध जलेबी गटक रहा है ।
वह, छिपी लाज तन को लपेट चिथड़ों में छप्पर टूट रहा है ।
ऊपर बंगले की हाला का अट्टहास स्वर फूट पड़ा है ।
अपमान का प्याला फोड़–फोड़ सम्मान सूंघते है साथी जी ।
निर्धनता की दो पहरी तज सुख च्चाम ढूँढते है हाथी जी ।
अरे, इस बूढ़े जन तंत्र में जन पर अत्याचार नहीं तो क्या है ।
जिसे देश्च से प्यार नहीं है वह गद्दार नहीं तो क्या है ।
युग बीते तब वेद ज्ञान से मुखरित हुई बात कल्याणी ।

सदियों पहले महा महिम चाणक्य गुंजाई थी यह वाणी ।
क्या, राजकीय चासन से जब–जब चुद्धाचार निकल जावेगा ।
तब–तब सत्यानाची विड्ढ धर दौड़ उसे डसने आवेगा ।
सत्य न्याय से रीत चुका ज्यों राजनीति घट अमृत वाला ।
लूट–पाट दंगे फसाद, रिश्वत चासन का किया दिवाला ।
अरे, सिंहों की सत्ता मरदानी अब, अबला नार नहीं तो क्या है ।
जिसे देच से प्यार नहीं है वह गद्दार नहीं तो क्या है ।

5. हम धारक थे सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, तप, त्याग, शौर्य के ।
हम वाहक आलोक अमरता वेद ज्ञान विज्ञान धैर्य के ।
सह अस्तित्व बन्धुता मैत्री, मानवता के तीर्थ हमीं थे ।
जग में दूजे कला, ज्ञान, अध्यात्म, कर्म, योगी न कहीं थे ।
निखिल सृष्टि, सौन्दर्य गहनतम का वरदान हम ने पाया था ।
निज अपमान, अहित, कायरता हमको कभी नहीं भाया था ।
अरे, इस मानवता के मुकुट देश में अब बन्टाढार नहीं तो क्या है ।
जिसे देच से प्यार नहीं है वह गद्दार नहीं तो क्या है ।

रचयिता – भमंगल
दिनांक 17.2.1981

स्वर्ग में आग क्यों लगाई है ।
धर्म दीवानों की बाड़ आई है ।

1. किसने मंदिर को जन्म दे ड़ाला, किसने मज़हब का डाल घोटाला ।
अपनी–अपनी ही पी, के मतवाला, विड्ढ की खेती को सींचनेवाला ।
पागलों की नहीं दवाई है, धर्म दीवानों की बाड़ आई है ।

2. कोई तलवार प्यास पीती है, फिर विभाजन का वार बाकी है ।
क्या सपूती का कण्ठ घोंट दिया क्यों विमाता का प्यार बाकी है ।
कोई मंजिल पकड़ नहीं पाया, रास्तों का चुमार बाकी है ।
कौन सा युग में चुक पायेगा, इसका कर्जा उधार बाकी है ।
बालू की भीत क्यों बनाई है धर्म दीवानों की बाढ आई है ।

3. कितने अहसान इस धरा के है, कितने अरमा वसुन्धरा के है ।
बिल्लियॉ दूध की रखैल कहीं मानवीय धर्म कोई खेल नहीं है ।
पड़ गई बीच–बीच खाई है, धर्म दीवानों की बाढ़ आई है ।
स्वर्ग में आग क्यों लगाई है ।

रचयिता – मदनलाल गुप्त भ आर्य
रचनाकाल सन् 1970

अगर ऋषि दयानन्द नहीं आता ।

किसका दम था, कौन भटकती मर्णोन्मुख मानवता आज जिलाता ।।
अगर ऋषि दयानन्द नहीं आता ।

आने से पूर्व की दशा रू
आर्य वंश का मान घटाते, ज्ञान बेचकर द्रव्य कमाते ।
वेद ज्ञान को लुप्त बताकर, शत–शत अपने धर्म चलाते ।
निशि दिन बाल विवाह कराते, पशु बलि देकर यज्ञ रचाते ।
गीत के महान गायक का, घुटनों के बल नृत्य कराते ।
सहन सका जब यह कुकर्म, तब रह न सका, आया मुस्काता ।
अगर ऋषि दयानन्द नहीं आता ।

ऋषिवर ने क्या किया रू
असद मतों का भण्ड फोड़कर, पर, सेवा में दौड़–दौड़कर
देशप्रेम का कफन ओढ़कर, प्राण दांव पर लगा होड़कर ।
अंधकार प्राचीर तोड़कर, वेद ज्ञान का बांध जोड़कर ।
आर्य धर्म की नहर मोड़कर, सेब ग्रंथों का रस निचोड़कर ।
सत्य ज्ञान के पावन जल में, कौन हमें नहलाता ।
अगर ऋषि दयानन्द नहीं आता ।

कल्पित विश्वासों में खोई सोई जाति जगानेवाले ।
भटका मानव हाथ पकड़कर, सच्चा मार्ग बतानेवाले ।
छुआ–छूत का भूत भगाकर, शुद्धि मार्ग अपनानेवाले ।
आर्य विरोधी विष उड़ेलकर अमृत घट छलकानेवाले ।
विष के बदले मुद्रा दें, अंतिम क्षण तक मुस्कानेवाले ।

आठ करोड़ अछूत, विधर्मी बनते–बनते कौन बचाता ।
अगर ऋषि दयानन्द नहीं आता ।

अनुपम त्याग तपस्या तेरी, फेंकी कहां धर्म रण भेरी ।
देश धर्म का तू रक्षक है, वर्ण धर्म पर श्रद्धा तेरी ।
जन्म भूमि दुष्टों ने घेरी, वीर वृती फिर क्यों कर देरी ।
पुन रू करो भारत में फेरी, अब के आओ अर्ज पे मेरी ।

अरिदल हो जाये परास्त, यदि तू आ जाये बिगुल बजाता ।
अगर ऋषि दयानन्द नहीं आता ।

अल्पकाल के लिये न आना, काम बहुत बाकी निपटाना ।
केवल अपनी जन्मभूमि नहीं जगत को ज्ञान सिखाना ।
सकरी पगडंडी से उनको वैदिक विड्ढद मार्ग पर लाना ।
महती गरिमा आर्य धर्म की सिखा, विश्व को आर्य बनाना ।

कर में ले वैदिक मशाल, आ, पाखण्डों के काठ जलाता ।।
अगर ऋषि दयानन्द नहीं आता ।

रचयिता – भ म|गल
रचनाकाल – 7.3.1984

अगर तुझे जीवित रहना है

दयानन्द कह गये खूब अब मुझे तो क्या कहना है ।
अगर तुझे जीवित रहना है ।

1. बापू की निर्पेक्ष धर्म की लाल बही को चूहे खा गये ।
दो खाते सापेक्ष धर्म के पाक और बंगला खुला गये ।
असम और त्रिपुरा के देवालय थक–थक सकपका गये ।
पंजाबी पतझड़ में मित्रों हरेवृक्ष भी तन सुखा गये ।
अब पूराण, गीता, रामायण छिप–छिप बूढ़े गीत गा रही ।
फटी पाग माखनवाले की अब कीचड़ में सनी जा रही ।
मानवता नीलाम हो चुकी हत्याओं की मेहंगाई में ।
ललनाओं की लाज बह रही, दुरित कर्म की गहराई में ।
अरे सोंना चांदी नहीं आज तो संगीने तेरा गहना ।
अगर तुझे जीवित रहना है ।

2. दयानन्द तो गये, अरे, क्या आवेंगे परिवार बढ़ाने ।
स्वयं राम आचार्य सपत्नी निज भक्तों से पांव पुजाने ।
क्या, सतसाई, रजनीच्य, बाल, अवतार उठेंगे हमें बचाने ।
चमत्कार गुरुड़म का छप्पर भोली मानवता पर छाने ।
क्या, मंदिर से पाङ्काण चलेंगे लिये हाथ में च्यस्त्र पुराने ।
या पण्ड़ों की फौज आयेगी लड्डू हलवा खीर पचाने ।
धूप दीप चंदन, प्रसाद, घन्टों से अरिदल रुक न पायेगा ।
अब पंड़ित पाङ्काण गात में प्राण प्रतिष्ठा कर न पायेगा ।
आर्य धर्म विध्वंसक झटके पड़े–पड़े कब तक सहना है ।
अगर तुझे जीवित रहना है ।

3. अपनी हिन्दी बोल प्राण की भेंट छात्र अमिताभ चढ़ाता ।
गौ रक्षा बिल राजा जी के हाथों में वापिस आ जाता ।
आर्य भूमि में आर्यांतरण निरोधक बिल सम्मान न पाता ।
मक्के का कीचड़ फफूंद क्यों आन्ध्र प्रांत में जा फेलाता ।
चोटी तक विङ्क फैल चुका है अंगारों में जलना होगा ।
गीता और ऊॅ ध्वज लेकर बांधव सहित उछना होगा ।
वेद मात अस्तन पय पी–पी आर्य बंधु को पलना होगा ।
दयानन्द की टकच्याला में हिन्दु जाति को ढलना होगा
आर्य देच्य हित अब अंगद को अपने पांव अड़े रहना ।
अगर तुझे जीवित रहना है ।

4. हिन्दू जाति का बेड़ा पोपो ने सागर में फँसा दिया है ।
पूजक जड़ बुद्धि तिलक कर बैठे ज्यों कागज गुल दस्ते ।
वंश नियोजन हत्याओं का भोजन भी हम ही है सस्ते ।
मल्लाहों की आंख मिचौनी विङ्ख उलीचना कब छोड़ेगी ।
झूठे विश्वासों की बिजली प्राण खींचकर ही दम लेगी ।
चुद्धिकरण हो गया हिन्दु का आर्य बना कोई तो क्या है ।
चूद्रों दीनों से नफरत है केवल कुर्सी से चिपके रहना है ।
क्फन बांधना होगा सिर से यदि आर्यत्व तेरा गहना है ।
अगर तुझे जीवित रहना है ।
दयानन्द कह गये खूब अब मुझे तो क्या कहना है ।
अगर तुझे जीवित रहना है ।

---

15 दिसम्बर, 1985 को मुचायरा हेतु

ताजा किसी की याद लिये जा रहा हूँ मैं

गिरह रू– गुरबत की आह पास लिये आ रहा हूँ मैं ।
चैर रू– विश्वास मात्र तेरा पा जीवन सुमन खिला ।
लाखों कृपायें भोग का उपहार भी मिला ।
कोई वस्तु ली न तुमनें, करूँ तुमसे क्या गिला ।
अब भी तुम्हारा दान दिया खा के नित जिया ।
पर हाय रे विपरीत चला जा रहा हूँ मैं ।
अहसान फ़रामोच हुआ जा रहा हूँ मैं ।
ताजा किसी की याद लिये जा रहा हूँ मैं ।
जब राजनीति रूपिणी सौन्दर्य खो चुकी ।
पावन धरम की चुनर पाप में डुबो चुकी ।
अब लोभ–त्याग, पाप, पुण्य पर सवार है ।
अब राजनीति खुद अनीति के मज़ार है ।
अब, महलों की दास झोपड़ी को पा रहा हूँ मैं ।
ताजा किसी की याद लिये जा रहा हूँ मैं ।
3.कवि से – करवट बदल औ संस्कृति के मोड़नेवाले ।
दानव को मानवीय युग से जोड़नेवाले
अम्बर में आग लग रही इन्सान सिक रहा ।
तू लेखनी की स्वामी कोड़ियों में बिक रहा ।
तू इश्क गीत गा रहा विङ्खयों में डूब कर ।
आया, जगाने तेरी हरकतों से ऊबकर ।
क्या प्रेयसी के प्यार में कलम भी सो गयी ।
क्या सरस्वती भी दास लक्ष्मी की हो गयी ।
संदेच अमरता का लिये आ रहा हूँ मैं
आबे हायत जाम दिये जा रहा हूँ मैं ।
ताजा किसी की याद लिये जा रहा हूँ मैं ।

दयानन्द बलिदान भूमि से

रचयिता भजोरावरसिंह आर्य भ
रचना काल – सितम्बर, 1983

1. आती है ऋङ्खि दयानन्द बलिदान भूमि से यह आवाज ।
ऋङ्खि के स्वप्न हुए नहीं पूरे, उन्हें पूर्ण कर आर्य समाज ।
जात–पांत के गढ़ के ऊपर हुई न अब तक गोला बारी ।

और नष्ट हो सकी न अब तक छुआ–छूत की भी बीमारी ।
चासन बदल गया भारत का, लेकिन बदला नहीं समाज ।

2. हैं सीमा को पार कर गये, काला बजार रिश्वत खोरी ।
है बढ़ते जा रहे दिनों–दिन बलात्कार डाका चोरी ।
स्वराज तो भा गया देच में लेकिन आया नहीं सुराज ।
उन्हें पूर्ण कर आर्य समाज ।।

3. कुरीतियाँ, रूढ़ियां, अन्ध विश्वास रहे हमको ललकार ।
अपनी सारी शक्ति लगा कर इनके ऊपर करो प्रहार ।
टूट पड़ो इन पर तुम, ऐसे ज्यों चिड़ियों के ऊपर बाज । उन्हें पूर्ण कर रू

4. जोर बढ़ रहा पाखण्डों का धूम रहे कितने भगवान ।
सज्जन सन्त मौन है, नंग होकर नाच रहे चैतान ।
इन धूर्तो का सिवा तुम्हारे, कहां करेगा कौन इलाज । उन्हें पूर्ण कररू

5. प्रचार के इस युग में ढीला पड़ा एकदम वेद प्रचार ।
विरोधियों के सन्मुख हमने डाल दिये अपने हथियार ।
कभी टूट पड़ते थे हम पाखण्ड़ों पर बन कर के गाज । उन्हें पूर्ण कररू

6. चार दचक हो गयें किन्तु हिन्दी न अभी तक अपनाई ।
चासन में, घर में दैनिक व्यवहारों में अंग्रजी छाई ।
छोड़ स्वभाषा, पर भाषा अपनाने में आती नहीं लाज । उन्हें पूर्ण कर रू

7. आर्य जाति के वीर सपूतों जो तुम जाग सके नहीं आज ।
बीच धार में डूब जायेगा तो यह आर्य समाज जहाज़ ।
साहस करों बना सकते हो तुम निश्चित ही बिगड़े काज ।
ऋषि के स्वप्न हुए नहीं पूरे, उन्हें पूर्ण कर आर्य समाज ।

रचयिता भमंगल
रचनाकाल – दिनांक 13.6.1986 राग केदार पर आधारित
मातृ भाङ्डा के हृदयोदगार

प्राचीन ऋचाओं में प्रसवकाल है मेरा, वेदां को संहिताओं में ननिहाल है मेरा ।

1. यूं बेटियां अनेक संस्कृत की खान में, किंतु अमृत का सिन्धु मेरे कलेवर महान में
गरिमा, अनूप देख रीझ गुण निधान में, पूर्वज ने लगन मेरी लिखी संविधान में ।
माधुर्य रूप, चील, सरलता भी गान में, उन्नीस साठ पांच तिलक था विधान में ।
राज्याभिङ्केक रूक मिला वनवास में डेरा, मुझको ही मेरे देच में अपमान ने धेरा । प्राचीन ।।

2. हुँकार है, भूङ्कण की तलवार चंद कीत्र सत्रह विजयमिली थी तो वरदाई छन्द की ।
श्रृंगार जलधि, जान बिहारी अनंद की, गंभीरता सागर की गागर में बन्द की ।
मैरां की मैं ही भक्ति, रसखान की मस्ती, उक्ती कबीर की हूं मैंथली की हुचक्ती।
तुलसी की तूमड़ी का घर–घर मेंमान है, चौपाईयों की गूंज तो मेरा ही गान है ।
सूर के तूबेरे में भीकमाल है मेरा, मेरे ही नरातम ने सुदाम को निबेरा
अब क्या हाल है मेरा ।। प्राचीन ऋचाओं में ।।

3. गुजरात के गांधी की बहिन मैं ही अकेली, गुरुदेव दयानन्द की मैं ही तो हूं चैली ।
गीता का ज्ञान बाँटने वाली हूं नवेली, वेदों की देवभाङ्डा की केवल मैं सहेली ।
डूबी न मात्र इश्क में अश्लील को धेरे नस गंगधर बह रहीं हिमराज से मेरे । रसराज धार।
ओ लाड़ले यदि तुझको प्यार देच से तेरे तो मेरा अखण्ड राज्य है प्रिय वेष में मेरे ।
जननी को विमाता न समझलाल है मेरा, पीये
गा मेरा दूध नो निहाल है मेरा ।। प्राचीन ऋचाओंरू
प्राचीन ऋचाओं में प्रसव काल है मेरा, वेदों की संहिताओं में ननिहाल है मेरा ।

रचयिता भमंगल
रचनाकाल 22.7.1990

जीवन की – अनिश्चितता राग केदार

संभव हुआ तो लौट के दर्शन करूंगा मां ।
आशीर्वाद कोष में वर्धन करूंगा मां ।

1. झुलसानेवाली मार्ग में शीतल समीर आज ।
रस सोम के रसिकों पर विष पानियों का राज ।

बैठे है लोग मार्ग में काटों का लिये ताज ।
चिड़ियों पे झपटते है हँस–हँस के गिध् बाज ।

यदि, किलकारियों क्रंदन में जो भूला न रास्ता ।
दुश्मन की गोलियों से जो पड़ा न वास्ता ।

यदि ला सका तो लौटके चरण में चंदन धरूंगा मां ।
आशीर्वाद कोष में वर्धन करूंगा मां ।

2. यदि वातावरण में तैर न पाई जहर–लहर ।
आकाश की छाती में घावों का न हो डर ।

खेली न दीन रक्त से कोई न होलियां ।
डसने अगर न आई सांपों की टोलियां ।

सुरसा के मुख सा भीङ्गण कर्फ्यू बिठा हुआ ।
बारूद से धरती का कण–कण सिचा हुआ ।

बच आ सका तो शाम को वंदन करूंगा मां ।
आशीर्वाद कोष में वर्धन करूंगा मां ।

3. अखबारों का सौभाग्य निर्बलों का अंत है ।
बन पर्वतों में जा छिपा सिद्धांत संत है ।

अब वेद धर्म मार्ग सम्प्रदाय कहाता ।
कविता का वासना से अब जुड़ गया नाता ।

तू जानती नहीं मेरे भविष्य फेर में
जेलों में बंद होगा या लाशों के ढेर में ।

कश्मीर से बच देहली में क्रन्दन करूंगा मां ।
बच पाया तो अवश्य आ अर्चन करूंगा मां ।
संभव हुआ तो लौटके दर्शन करूंगा मां ।

रचयिता भमंगल

तुलसी जयंती सम्वत 2005 सन् 1948 कवि सम्मेलन में ।

ीर्ङ्करू गोस्वामीजी ने हिन्दी को अमर बनाया है ।

1. यवनों के दुष्कर्मों से देवालय को नहि जाते थे ।
हठ योगी और ढोंगी कवि निर्गुण का पाठ पढ़ाते थे ।
विद्वानों की ही रचना तक भाङ्खा सीमित पाते थे ।
मर्यादा पुरुङ्खोत्तम गुणतज, फ्चु समान मंडराते थे ।
कुटिया से अमृत मय वाणी का तब श्रोत बहाया है ।
कवि कुल रवि गोस्वामीजी ने भारत अमर बनाया है ।

2. यद्यपि ग्यारह ग्रन्थों का ाुभ वाणी से निर्माण किया ।
किन्तु एक रामायण ही से अमित ज्ञान वरदान दिया ।
हिन्दी भाङ्खा को तुलसी नें अतुल ाक्ति का दान किया ।
राम चरित द्वारा हिन्दी का झोपड़ियों तक मान किया ।
पुत्र त्याग और बन्धु प्रेम का क्या आदर्ा दिखाया है । कविकुल रवि गोस्वामी ।।

3. वर्तमान प्राचीन ाैलियां सब रामायण में आई ।
नवरस का परिपाक बनाकर नव उपासना समझाई ।
नारी धर्म गृहस्थ धर्म के वर्णन की सुन्दरताई ।
राजनीति बटु धर्म ाुभ कर्म नीति भी दर्ााई ।
अमर सुकवि की अखण्ड रचना पर पुष्प चढ़ाया है ।
कवि कुल रवि गोस्वामीजी ने भारत अमर बनाया है ।

सवैया भ तुलसी की भाङ्खा का महत्व भ
रचयिता भ मंगल

उर्दू की नाजुक नज़ाकत पे नाज किये ।
इंगलिा के लचीले झूले पे झूल जाइये ।
बंगला, गुजराती, मलयालम, या मराठी के ।
सितारे अपने जामें चुन–चुन जड़वाइये ।
बिहारी और भूङ्खण, सूर, नन्द और मीराबाई ।
मैथली ारण का मंत्री मंडल बनाइये ।
हिन्दी राजभाङ्खा के पद पर बिठा के यार ।
तुलसी के चरणों में मस्तक झुकाइये ।

रचयिता भ मंगल
रचनाकाल 14.8.1986
भराग केदार

भ राष्ट्गीत

स्वतंत्रता दिवस बेला द्वारा उद्बोधन
कितना विचित्र आज का सम्मान मेरा ।
आने से पूर्व मार्ग में अपमान बिखेरा ।

1. कितना विनाच यज्ञ धरा धधक रहा ।
होकर अनाथ जैसे जल रही वसुंधरा ।

पंजाब भुना जा रहा, कश्मीर सुलगता ।
गुजरात सिक रहा है, दिल्ली भी उबलता ।

हर क्षेत्र में ज्वालाओं की लपटों का बिछा जाल ।
अंगारों के अंबारों में दबता हुआ भू चाल ।

आहुतियां दाताओं को चमच्यान में घेरा ।। आने से पूर्व ।

2. सिंन्धूर बेचुमार लुटा कर मुझे लिया ।
लाखों चहीद कोसते अब देख कर दचा ।

सौहार्द प्रेम के महल खण्डहर मकान से ।
नफरत के प्रेत प्रीत की नगरी में आ बसे ।

भीतर के छीर सिन्धु में बाहर का विङ्ग घुला ।
लगता है, गुलामी का सपना संजो लिया ।

स्वतंत्रता के दिन में न घुस जायें अंधेरा । आने से पूर्व

3. यदि वीर हो श्रम से संवारों मेरे देच को ।
साहस अगर हो पूर्ण करो खण्ड देच को ।

धन का गुमान हो, चुकाओ विश्व कोङ्ग को ।
या दूर करो धन से गरीबों की ठेस को ।

सीमाओं पर दिखाओ अपने शक्ति वेङ्ग को ।
आतंकवाद आपका अति निंद्य कर्म है ।

निज जन्म भू से प्यार नहीं कैसी शर्म है ।,
क्या दुग्धपान है या रुधिर पान है मेरा ।

क्ब तुम पे करुं गर्व यह अरमान है मेरा ।। कितना विचित्र ।।

4. वह शत्रुं से बच्चे को पीठ बांधकर लड़ी ।
हत्याओं की छिप–छिप के तुमने बांध दी झड़ी ।

बन–बन यह भटकता रहा स्वातंत्रय दीप लें ।
तुम दास्ता को देने निमंत्रण स्वयं चले ।

क्या लाज नहीं भाईयों के रक्त पान में ।
क्यों दूध लजाते मेरा दुनिया के सामने ।

मिल जाओ गले फिर से यह फरमान है मेरा ।
कितना विचित्र आज का सम्मान है मेरा ।

रचयिता भ मंगल
रचनाकाल 12.3.1999

कविओं को चेतावनी

;ध्वनि डूबतों को बचालेने वाले द्ध

1. युग पुरुष लेखनी अब उठा लें यह भरत भूमि तेरे हवाले ।
क्यों दबी सी है संस्कृति हमारी क्यों सहम सी गई भूमि प्यारी ।
अब अनुजता है भयभीत तेरी, तेरी क्षमता दनुजता ने धरी ।
लाज लुटती है यहां नारियों की, कोई कीमत नहीं साड़ियों की ।
तू है चौहान का चब्द भैदी, चंद्रवरदाई का लक्ष्य छेदी ।
लेखनी तेरी तलवार भाले, यह भरत तेरे हवाले ।

2. पोखरण दुदुभी पांव सुनकर, जिनकी धड़कन रुकी कांपते है ।
बाहरी चत्रु वे टापते है, स्वर्ग हथियानें को झाकते है ।
घर में बारूद चुप–चुप बिछाते, निलज संसद में हुल्लड़ मचाते ।
झोपड़े रक्त पी बिल–बिलाते, राबड़ी के महल खिल–खिलाते ।
सबको सिखा देनेवाले, यह भरत भूमि तेरे हवाले ।

3. तू ही बल्मीकि से ऋषि बना था मैथिलीया निराला ठना था ।
सारा इतिहास तूने बनाया, युग बदलना सदा तुझको भाया ।
बहुत श्रृंगार रस पी चूका तू, हास्य हँस–हँस के भी जी चुका तू ।
काव्य दायित्व अब यदि निभाना, जननि की भेंट में जीवन चढ़ाना ।
वीर रस कायरों को पिलालें अब भरत भूमि तेरे हवाले ।

4. अपना काव्यत्व जाने न पाए ना बिके, ना झुके न लजाये ।
कलम परतंत्र होती नहीं है प्रलय तक में भी सोती नहीं है ।
धरा रोती गगन गूंजता है, चिष्ट मूर्खों के पग पूजता है ।
काव्य गिरि ऊंगली पर फिर उठा लें यह भरत भूमि तेरे हवाले

5. यह धरा चक्रधर श्याम की है, यह न बाबर की, यह राम की ।
चिवा राणा व चौहान की है भीम, अर्जुन, व हनुमान की है ।
हमनें सीखा है तीरों पे सोना जोहराग्नि हमारा बिछौना ।
जननि के अरिदलों को मिठावे हाथ गाण्डीव अपना बना दें ।
ऊंगलियों को प्रत्यन्चा बना लें, यह भरत भूमि तेरे हवाले ।

रचयिता भ मंगल
रचनाकाल –सन् 1959
रचना स्थान – टोंक
;कल्पना द्वारा फागुन में विरहणी का पति को सन्देच द्ध

आया फागुन मास सुहाना, विरह ताप में अब न जलाना । आया रू

1. अवलम्बित प्राण रहे अब तक, फागुन में दर्चन होगा ही ।
दिन–रात विरह उत्पीड़ित हूॅ उनको भी चिन्तन होगा ही ।

संपूर्ण हो गया चीतकाल ज्यों –त्यों यह मास हाथ आया ।
मन की आचा पूरी होने का च ुभ संदेच साथ लाया ।
नैयनों को छबि सुधा पिलाना आया फागुन मास सुहाना ।

2. इस मस्त मास में सब सखियॉ नूतन श्रृंगार सजायेगी ।
अपने प्रीतक को रूप माधुरी रस का पान करायेगी ।

मेरी अखियॉ विरह ताप से व्याकुल हो ललचायेगी ।
किंतु विक्च होकर वे तुम बिन हो हताच रह जायेगी ।
नीरस जीवन को सरसाना । आया फागुन मास सुहाना ।

3. राधा सी मुझ विरहन के तुम सुंदर श्याम मनोहर प्यारे ।
वैसे नितुर न होना तुम तो, जैसे राधा प्राण पियारे ।

उतनी तड़फन सहन सकूंगी बैठी आचा सरित किनारे ।
आज कल्पना लिये आ रहीं, अंतिम विवरण द्वार तुम्हारे ।
अंतिम क्षण से पहिले आना । आया फागुन मास सुहाना ।

4. यह संदेच मिले जब तुमको देर न करना ए मन भावन ।
प्रति पल युग समान जाता है , कब निरखूंगी वेद पद पावन ।

एक बार आलिंगन करके उर की ताप चांत करलूंगी ।
सराबोर कर दूंगी रंग में तब फागुन को सफल कहूंगी ।
दर्च बिंदु से प्यास बुझाना निर्मोही अब तो आ जाना ।
अपना पावन सानिध्य लुटाना । आया फागुन मास सुहाना ।

रचयिता भ मंगल
रचना 1979 को
यह भी मुझे स्वीकार है

भर–भर कलच लाया करूॅ, तेरे ही गुण गाया करूॅ ।
संसार हो मैका पिया के गॉव न जाया करूॅ ।
संगीन दोनो राखियों के हाथ में, तू थामले ।
यह भी मुझे स्वीकार है ।
इन राखियों के तार में रिपु चीच की माला बनाना ।
तू न आगर आ पाये तो, संदेच ही जय का पठाना ।
आजन्म जी सकती हूॅ में निर्बन्धु केवल तेरा नाम ले । यह भी मुझे स्वीकार है ।
भर–भर कलच लाया करूॅ तेरे ही गुण गाया करूॅ । यह भी मुझे स्वीकार है ।

रचयिता भ मंगल
रचनाकाल 13.12.1978
भ वर–वधु के उद्गार, पाणिग्रहण पर विचार

वधु – हृदय की मुस्कान हो तुम, कण्ठ का मृदु गान हो तुम ।

1. साधना की वेदिका पर, मूर्ति अनजानी सजाई ।
प्रणय का दीपक जलाकर तन की आहुतियां लगाई ।

मंत्र कल्पित, छन्द कल्पित, मूक स्वर से राग गाई ।
राह तक अनजान की, आंखे थकी तब ज्योति आई ।
सारे जीवन के संजोये, अरमान हो तुम ।
बिन किये अहसान हो तुम । हृदय की मुस्कान हो तुम ।

6. तुम अगर चंदा हमारे, चांदनी मैं भी तुम्हारी ।
चांदनी जग–मग अगर तुम, तो चकोरी मैं विचारी ।

मैं नहीं बनवास में ही साथ रह कर तृप्त हूॅगी ।
मैं नहीं बृज कुंज में ही रास रच–रच मस्त हूॅगी ।

प्राण सेवा में चढाकर छॉव प्रति पल की बनूॅगी ।
पॉव में पलके बिछाकर, भी यहीं मुख से कहूॅगी ।

क्या, इक नई पहचान हो, परनित नये महमान हो तुम ।
हृदय की मुस्कान हो तुम, कण्ठ का मृदु गान हो तुम ।

——

वर– जीवन का आव्हान हो तुम, तृषित का मधुपान हो तुम ।

1. कैकई की भांति रण में कील उंगली को बनाना ।
मोह मिथिला के नगर का छोड़ बन–बन साथ आना ।

कंटकों से पूर्ण जीवन पर, सुमन मन से सजाना ।
दो कलेवर, प्राण केवल एक जगती को दिखाना ।
इस पुनीत वसुन्धरा की ऱ्यान और अभिमान हो तुम । जीवन का ।।

2. सरित सर निर्जर सगर में ग्राम नगरी और नगर में ।
बन बीहड़ पर्वत, अचल में, थल, अथल, नभ, चर, अचर में ।

घात में पग–पग भटकते ऱ्यीच्य दय्य से हर डगर में ।
देखना बहका न जाना मृग कपट पूरित नज़र में ।

जगत में अनजान हो पर चतुर और सुजान हो तुम । जीवन का ।।

3. राज्य धन, सेना, सभी जाये न पद्मिनी लाज जाये ।
ज्ञान अनुसूया, सुमित्रा, त्याग जग में मान पाये ।

नारी का सम्मान भारत में सदा ऊॅचा रहा है ।
नारी पूजा हो जहॉ सुख है वहॉ श्रुति ने कहा है ।
राम, श्याम, शिवा सपूत प्रताप, सुत की खान हो तुम । जीवन का आव्हान

4. चंद्र मुख पर राहू केतू आक्रमण होने न दूॅगा, दृष्टि कोई भी उठी तुम पर उसे जीने न दूंगा ।
लक्ष्मी का रूप हो पर लक्ष्मीबाई सी गमकना, धर ले जब जब अंधेरा तब ही चपला सी चमकना ।
कौन कहता है की अबला, तड़ित सी गतिमान हो तुम ।
ऑख की पुतली बनालूॅगा अगर इन्सान हो तुम । जीवन का आव्हान हो तुम ।

रचयिता भ मंगल
रचनाकाल –दिनांक 9.4.1998
अतुकान्त

कुकुडूं – कूं, अण्डे की पुकार
ओ मानव ! नहीं, मानव की पोचाक में दानव, क्या किसी जीवन से तू प्रेम करना चाहता है ।

1. नहीं तू करता है प्रेम स्वार्थ क्च बच्चों से, पत्नी से, माता–पिता से मुझसे क्यों नहीं है । इसलिए ना कि वे कमाते, प्यार करते, सेवा करते है । बस याद रख मैं इस जन्म में नहीं कमा सकता, पिछले जन्म में मेरी कमाई से, तू पला, पढ़ा, खाया पीया और मैंने तेरा जोड़ा भी एक सुन्दरी से मिलाया ।

   महलों और बंगलों में भोग किये और तू खूब इतराया, मैं सब देख–देखकर केवल हर्षाया । क्योंकि उस जन्म में मैं तेरा बाप था, मां था, दादा, मामा, और ताया था । मुझे भूल गया या पहचानता है । क्या किसी जीवन से

2. अब तू मुझे खाकर जीना चाहता है, बलवान, निरोग या पहलवान होना चाहता है । चायद तू अपने वर्तमान जीवन की कठिनाईयों से डरता है उनका सामना नहीं कर सकता कायरता से मरता है ।
   वैरता की डींग भरता है, और वीरता का दिखावा भी मुझ पर ठानता है । क्या किसी जीवन से

3. अरे मैं ! तेरी मां की तरह तेरी पत्नी की भांति मेरा मेरी मां बहिनों जातिवालों का करवा लूंगा परिवार नियोजन ।

   सिर्फ दो ही बच्चे तीन साल नहीं पूरी आयू में जन्मेंगे मेरी माताओं के । तब मेरे क्चजों के बजाय तेरी संतानों को पकायेगा भोजन । परिणाम को मानता है किसी से प्रेम करना जानता है ।

4. आज तू मेरा आमलेट बनाता, दूध में, आलू के साथ बोटल के लेवल पर, दवा के साथ ।
   पथ्य में, उजागर या नेपथ्य में,चोक से, होटल में ''विव्हस्की'' के साथ टेबल पर । मुझे उबालकर, सेंक कर खिलवाड़ के साथ फेंककर, चपेटता, दबोचता, तोलता और बेचता है, नीलाम करता है, तुझे ही नहीं तेरे सारे जीवन को इस प्रकार घृणित बनाता है और बदनामता है । क्या किसी जीवन से तू प्रेम करना ।

5. तू मानव होकर ठुकराया योगदर्च्यन
6. को, लजाया मानव जीवन को, धिकराया धर्म, कर्म, काम, मोक्ष को, और चर्माया अपने जीवन को ।

   अहिंसा के सिद्धांत को अनुमानता है । क्या किसी जीवन से तू प्रेम करना ।

7. याद रख मेरा चैलेंज, मैं तुझ से कभी किसी जन्म में या इसी जन्म में किसी रूप में,
किसी समय में, तुझ से बदला लूंगा, माफ नहीं करूंगा, तू रोयेगा,
गिड़गिड़ायेगा और आंखों को रक्त से भिगोयेगा मन में कुम्हलानता है । तू किसी जीवन
में ।

8. और सुन मेरे अहसान मेरे बाप ने पूर्वजों ने हर जगह, संसार में तेरे रचयिता की
तुझ पर कृपाओं को स्मरण कराने केलिये ब्रहम् मुहूर्त में उसको धन्यवाद देने हेतु ।
तुझको मधुर स्वर लहरी सुनाकर जां नमाज़ या चन्दन चौकी बिछाकर सचेत किया जगाकर
संध्या उपासना में बिठाया और उसके बदले में तुझ से एक पैसा भी
तनखवाह का नहीं उठाया अरे भूल गया अहसान और तू

मुझे उधेड़कर, मरोड़कर, उछालकर अथवा रगड़कर, चीरकर उबालकर
निकाले अरमान और करता रहा मेरा सफाया ।
इतनी अभिमानता है। क्या किसी जीवन से

9. तू ने लोगों को भ्रमित करने हेतु मेरे कई उपनाम तखल्लुस या गुप्त नाम रखे ।
कभी चिकन, कभी टर्की, कभी कलंगी, लंगडा, चूसा आदि रखे और मेरी नई–नई
पहिचान निकाली । परंतु याद रख ।

मेरे पूर्वजों की तरह अब नहीं करूंगा एक पांव से तुझे अभिवादन । मेरी हर वांग
मुझे अब धिकारेगी, कोसेगी, लताडेगी, और निरक्ंय करने का आव्हान करेगी ।
क्यों हठ ठानता है क्या किसी जीवन से प्रेम करना जानता है ।

रचयिता भ मंगल
दयान्नद ऋषि से

काच तेरा आवन हो जाये ।
आर्य धर्म का सूखा उपवन, हरियाला सावन हो जाये ।

1. भगवानों की बाढ़ आ रही, प्रलय सिंधु उमड़ा आता है ।
अति प्राचीन हिन्दु उनकी पूजा में ही डूबा जाता है ।

उधर यवन ईसाई द्वारा विष प्रभाव बढ़ता आता है ।
दिव्य मार्ग जो दिया आपने आर्य उसी से कतराता है ।

आर्य जाति की रक्षा का आव्हान आपको बुलवाता है ।
ऐसा न हो की दुर्दिन मार्ग में हिन्दु की पगड़ी लुट जायें ।
आजी हवन कुंड में आर्य विरोधी रावण का हवन हो जायें ।
काच तेरा आवन हो जाये ।

2. सूर्य किरण के झूले से उतरो निज जननी धरा पर आओ ।
यहां नहीं सेवा प्रबंध मेरी कुटिया का मान बढाओ ।
अधिक समय रोकूंगा ऋषिवर पिछली घटना को बिसराओ ।
केवल भीख आपसे इतनी मांग रहा हूं दया लुटाओ ।
तीस कोटि युवकों को कट्टर आर्य बनाकर ही दिखलाओ ।
वेद धर्म के घोर चत्रु धुल जायें धरा पावन हो जायें ।
काच तेरा आवन हो जाये ।
आर्य धर्म का सूखा उपवन, हरियाला सावन हो जाये ।

.....

रचयिता भ मंगल
उपकार की महिमा

सूर्य की असंख्य किरण पृथ्वी पर उतर जैसे, तरु तृण जन जीवन को जीवन पिलाती है ।

जैसे धेनु जाति धर्म ऊंच नीच भेद छोड, तिनकों के बदले में अमृत पिलाती है ।
वेदों का दिव्य ज्ञान मान कल्याण करता, नदियां भी रात दिन सेवा में बिताती है ।
वैसे ही सच्ची आर्य आत्मायें वह है, जो पराये उपकार हेतु धरती पर आती है ।

रचयिता भ मंगल
रचनाकाल –सन् 1952 भ श्रंगारिक

पुतलियों में कर बसेरा. आज वीणे ध्यान तेरा ।

1. हृदय नभ का तुमुलतम तब तक न मेरा दूर होगा ।
सरस स्वर तेरा प्रकाचित प्रणायिनी जब तक मेरा दूर न होगा ।
मौन वृत करता प्रदर्चित मानिनी अज्ञान तेरा ।
पुतलियों में कर बसेरा. आज वीणे ध्यान तेरा ।

2. युग बदल संसार पलटा निन्द्य वंदन कट चुके अब
हो गया एकी करण ली देच्च में स्वाधीन करवट ।
एक तेरा ही निबल मरदास्ता का निपट चेरा । पुतलियों में कर रू

3. मूक स्वर मुखरित न होकर बन गया उन्माद मेरा ।
तब विरह साकार निचि दिन जम गया है डाल डेरा ।
यह बता क्या स्वर सरस की बाट में अवसान मेरा । पुतलियों में कर रू

4. साधना चिरकाल से पूरी न हो पायी तुम्हारी ।
योग ज्वाला में तपाकर, क्यों किया तब तन दुखारी ।
ओ वितराग समाधि तज नीरस है सब समान तेरा । पुतलियों में कर रू

5. क्षितिज, रत्नाकर, अवनी, आकाच्च, अनल, मलय, अनिल, में ।
गिरि, चिखर निर्झर सुधाकर भानु में कण–कण निखिल में ।
ढूंढकर देखा हृदय तक व्याप्त सब में गान तेरा । । पुतलियों में कर रू

6. वेदना उर में छिपाकर लक्ष्य तब, रव को बना कर ।
कर युगल सम्मुख बढ़ाकर स्नेह का दीपक जला कर ।
मार्ग में पलकें बिछाकर, कर रहा आव्हान तेरा । पुतलियों में कर रू

———————————————————————————————————————

रचयिता भ मंगल

वर–वधु के संबध में समाज के चुभ विचार
जैसे सूर्य चंद्र अपनी रश्मि ज्योतिदान द्वारा प्राणि मात्र जीवन हित अमृत बरसाते हैं ।
जैसे योगी यती, महा पुरुष त्याग सेवा की, वेदिका में विश्व हित आहुति बन जाते हैं ।
धरती के अमृत पुत्र देच्च प्रेम दीवाने, जन, धन, परिवार त्याग बलि हो जाते हैं ।
वैसे ही नव दम्पति सेवा समर्पण लेकर, सेवा वृत ले आज गृहस्थ में आते हैं ।

रचयिता भ मंगल
रचनाकाल दिनांक 18.8.1979

काच तेरा आवन हो जाता

1. मिलकर नहीं बैठते चाहे चीतल स्वांस नहीं मिल पाती ।
तेरी पायल का रिमझिम स्वर कहीं वाटिका को सुनवाती ।
फूल नहीं बिखराती आकर मेरे नीरस मन उपचवन में ।
पहुनाई स्वीकार न करती एक रात की तृषित भवन में ।
अरे चार आंसू ही रुककर बरसाती मेरे आंकन में ।
आंख हो जाती निहाल और धाम मेरा पावन हो जाता ।
सावन हरियाली बन जाता।। क्च तेरा आवन हो जाता

2. मेरी राह पुरानी सन्यासिन, इसकी तपसी जीवन है ।
लोक लाज के मन की मीरा तोड़ नहीं पाई बंधन है ।
तनमन जलता रहा रात भर एक पांव से दीप चिखासा ।
कोई राही आया लेकर क्षणिक नेह भी खिंचा –खिंचा सा।
मत आना मग में अब पग–पग काटों सी तीखी उलझन है ।
हम तुम मिलते नहीं किंतु प्रतिफल मिलता छोटा सा मन है ।
अरे, महल व्यर्थ यदि तेरे हाथ से कुटिया पर छावन हो जाता ।
काच तेरा आवन हो जाता

3. जनम–जनम का साथ रहा था और रहेगा, वचन दिया था ।
प्रथम वृक्ष की छाया से ही साथी दूजा मार्ग लिया था ।
हृदय जुडता नहीं स्वाति बिन चाहे चातक प्यास सताती ।
साज नहीं बजते सरगम पर दुरूखों की जमात जुड़ जाती ।
तेरा एक–एक बोल पिलाता अमृत प्याला वेद मंत्र सा ।
तेरी मधुर चाल विपता, पर चासन करती लोकतंत्र सा ।
अरे प्रथम राग के चौराहे पर, चार घड़ी गायन हो जाता ।
काच तेरा आवन हो जाता

पुण्य तिथि – श्रीमती इंदिरागांधी के लिए
रचयिता भ मंगल रचलाकाल 31 अक्टूबर 1985
राग केदार पर आधारित

मेरे वतन के लाड़लों अंतिम प्रणाम लो ।
झुकने न देना हाथ में तिरंग थाम लो ।

1. सौहार्द, प्रेम, त्याग भरा ध्वज महान में
हमनें गमाई चान मर के इसकी चान में
लाखों सिन्धुर पुछ गये थे इसकी आग में ।
कितने हुए बलिदान मातरम के गान में ।
ऊँचा उठाये रखना इसे आसमान में ।
सम्मान मिल चुका है इसको जहान में ।
सुख–चांति अहिंसा का यह सच्चा मुकाम लो ।
मेरे वतन के लाड़लों अंतिम प्रणाम लो ।

2. बाहर त्रियूल धरके कंटकों के जाल पर ।
परमाणुओं की पर्वती बारुदी ढ़ाल पर ।
चलना संभलके हर चरण झंडा उछालकर ।
सदियों अजित तनें में तने हुए मस्तक क्यािल पर ।
लगने कलंक पाये न भारत के भाल पर ।
उठने न पाये आंख किसी की मचाल पर ।
जाती हूं सोंप हाथ में चेतक लगाम लो ।
मेरे वतन के लाड़लों अंतिम प्रणाम लो ।

3. अपनी अजेय चाल को चलना न भूलना ।
धन–धाम राज ताज पा मन में न फूलना ।
फांसी की कतारों में पड़े चाहे झूलना ।
पर दास्तका के बंध कभी न कबूलना ।
अपने वतन को दिल से मान स्वर्ग थाम लो ।
मेरे वतन के लाड़लों अंतिम प्रणाम लो ।

4. धरती यह राम–श्याम की गांधी की टहलती
जिसकी स्वतंत्रता की दयानन्द ने पहल की ।
जिसके लिए हंस–हंसके हमने यातना सही ।
लेने को जन्म इसपे तरसते है देव भी ।
मेरी भी प्रार्थना प्रभु से है तो बस यह ही ।
जन जन्म में तो हिन्द में चाहूं न स्वर्ग में ।
फूलों –फलों आचीष का अंतिम कलाम लो ।।
मेरे वतन के लाड़लो अंतिम प्रणाम लो ।

रचयिता भ मंगल
रचनाकाल 14.8.1986
राष्ठीय

देच के पहरेदारों ;नेताओंद्ध से
सुनो पहरुओं कान खोलकर, बंगलों से अपना मुख मोड़ो ।
आज़ादी को मत लुट ने दो, या फिर चौंकीदारी छोड़ो ।

1. पीड़ा कभी सताती तुम को, अध भूखे सोनेवालों की ।
याद कभी क्या आती तुमको, छप्पर में रहने वालों की।

टीस तुम्हें चूभती है क्या, बिन औड्ढधि के मरनेवालों की ।
तुम्हें न चिन्ता गांव की, खिन्नों की पिछड़े जन दीनों की ।
चिथडों में लिपटी नारी, चिचु भूमि पड़े आश्रयहीनों की ।
तुम तो अपनी भरो कोठियों, कोई मरे जिये कोई चाहें ।
किन्तु समझते है हम अब तो, गांधीवाद तुम्हारा क्या है ।

2. भिन्न–भिन्न धर्मी, भाषाओं में सोई एकता हमारी ।
बहुल जातियों की खेती में बोई सी बान्धवता प्यारी ।
मिली–जुली पावन संस्कृति में, त्योहारों की चोभा न्यारी ।
जुदा वेष भूषा वालों ने, इतिहासों की भूल सुधारी।
फेंक दासता के बन्धन को आज़ादी के सेज संवारी ।
किन्तु उधर बेगानों को यह स्वर्ग भूमि कब मन मे भाई ।
इधर खून के प्यासों ने मिल राजनीति चतरंज बिछाई ।
अरे तुम, हटो सुरक्षा हम लायेंगे । झोपड़ियों का रस न निचौड़ो । आज़ादी कौ
यह कोई जागीर नहीं है, कुर्सी से रिश्ता अब तोड़ो । सुनो पहरूओं कान खोलकर

3. मत भूलों वह समय आयेगा, अन्तिम काल तुम्हारा होगा ।
अन्यायों के फलस्वरूप कैसा बेहाल तुम्हारा होगा ।
पापों की दुर्गन्ध चवों से आयेगी, हम दूर रहेगें ।
मरघट, कब्रिस्तान तुम्हारी,
लाचों से तकरार करेंगे ।
कव्वे, चील उन्हें खाने से नफरत और इन्कार करेंगे ।
जगह मिल सकें तुम्हें नर्क में, इतनी सी भी आचा छोड़ा। सुनो पहरुओं कानरू
सुनो पहरुओं कानरू खोलकर, बंगलों ये अपना मुख मोड़ो ।
आज़ादी को मत लुटने दो, या फिर चौकीदारी छोड़ो ।

रचयिता भ मंगल
रचनाकाल दिनांक 22.10.1959
रचना स्थल ठेनिंग सेन्टर देवली विदाई के साथियों से

हार की लड़ियां बिखरना चाहती है
अब गगन के राह की बिरियां उतरना चाहती है ।
नेह की नदियां उमड़ना चाहती है ।
हार की लड़ियां बिखरना चाहती है ।

1. दूर था इस स्वप्न सागर का किनारा, प्राण पण से बांध का निर्माण प्यारा ।
हरतरी ने लहर का लेकर सहारा, एक लंगर में सभी ने स्वत्व हारा ।
नेह का संदेच मानस में उतारा, आ गया तूफान बन अवसर करारा ।
कुल ढह जावे न, उमड़ी स्नेह धारा, प्यार की तरियां बिछुडना चाहती है ।
हार की लड़ियां बिखरना चाहती है ।

2. नीड़ के निर्माण या अवसान फिर–फिर श्रांत या कलगान, या मुस्कान फिर–फिर
हर्षयुत, पुलकित कभी या म्लान फिर–फिर, नव सुफल रस पान अन्चन दान फिर–फिर
स्नेह में उलझन कभी आव्हान फिर–फिर, नित नया बिझुरन नई पहचान फिर–फिर
अंत में चिड़िया मगन प्रस्थान फिर–फिर, वाटिका से आज उठना चाहती है ।

3. एक मधुचाला खुली निश्चित समय तक दक्ष साकी ने पिलाई तीव्रमय तक ।
रंग हाला ने जमाया पुतलियों तक किस स्मरण में खो रहा मानव हृदय तक ।
होच में आना कठिन जीवन प्रलय तक, भोर की बेला हुई जागे मलय तक ।
लड़खड़ाते डगमगाते ये सुना स्वर, क्या, बज़्म की दुनिया उजड़ना चाहती है ।
हार की लड़ियां बिखरना चाहती है ।

4. हर दुनिया का निवासी है सुधाकर, मुस्कुराती है कमलिनी दर्च पाकर ।
चाम घन की दूर से ही चामता पर, नृत्य कर उठती मयूरी गान गाकर ।
प्रियतमा करती प्रवासी के विरह पर, उर पटल में झांक आलिंगन परस्पर
स्मरण करता मिलन उस पार से ही, बस इसी संतोष की घड़ियां पसरना चाहती है ,
हार की लड़ियां बिखरना चाहती है ।

5. मंत्र जो सौभाग्य से पाये पथिक, मत भूल जाना ।
भार जो तुमको मिला, मक़सूद मंजिल पर चढ़ाना ।
मार्ग में भटके न मन, इतना सहिष्णु इसे बनाना ।
मार्गदर्चक के चरण में, फूल श्रृद्वा के चढ़ाना ।
श्रम विजय माला पहिन मणियां बिहंसना चाहती है ।
हार की लड़ियां बिखरना चाहती है ।
अब गगन के राह की बिरियां उतरना चाहती है ।
नेह की नदियां उमड़ना चाहती है ।

राष्ट्रीय

''आजादी की चालीसवीं वर्ष गांठ पर''
रचयिता भ मंगल रचनाकाल 15 अगस्त, 1987

मानव निरह मौत के अभियान ने घेरा ।
रोती हुई गलियों में सिस्कते हुए कुटीर ।
जलते हुए छप्पर में तापते हुए अमीर ।
सब्जी का भाव बड़ रहा मानव का मौल कम ।
संसद में जा रहीं है डाकुओं की कतारे ।
मंझधार में पड़ा है, छूटी है कगारे ।

मानव के रक्त से भरे बहते है फव्वारे ।
बेगाने हो गयें जो मूल में थे हमारे ।

अजादी की दोपहरी में लाचों का अन्धेरा ।
क्या और बीसवीं सदी अरमान है तेरा ।

2. जो राष्ठ पहरुओं तुम भयभीत से लगते ।
सिंहासनों की चांति में बारुद सुलगते ।
सिन्धूर तड़फते है पलने भी बिलखते है ।
किलाकारियों के स्वर यहां क्रन्दन में बदलते ।

उर में तुम्हारे दिल हैया पत्थर जड़े हुए ।
ताले लगे कि बुद्वि पें पर्दें पड़े हुए ।

निग।न्ध हुए फूल अब कटि महक रहे ।
चन्दन की वाटिका में अंगारे दहक रहे ।

पचास रात्रियां गई आया न सबेरा ।
क्या और बीसवीं सदी अरमान है तेरा ।

3. बलिदानियों के त्याग का अहसान वर्ष आज ।
पी–रक्त सोने वालों का अरमार पर्व आज ।

आज़ाद सितारों का हिन्द वन्द जड़ा ताज ।
किय मौल खरीदा है, हम को नहीं अन्दाज ।

जो मिट गये उनका तो इतिहास बनेगा ।
चरणों में उनके पुष्प ले आकाच झुकेगा ।

मिल जाओं गले अब भी खून एक हमारा ।
गोदी में प्रभु ने एक ही माता के उतारा ।

जल वर इसी सागर के है दूजा ने बसेरा ।
श्रृद्वा सुमन स्वरूप पर्व गान है मेरा । क्या और बीसवीं सदी अरमान है तेरे

रचनाकार भमंगल
रचनाकाल दिनांक 26.8.1979

रचना स्थान साईरस होटल बम्बई में गले की जांच कराने गया तब होटल में लिखी

भयह भी मुझे स्वीकार है

1. क्षितिज के उस पार, या इस पार, इरित सुगम कगार या मझदार ।

नेह की गल बांह, या तलवार, गोलियों की मार या, पुचकार ।
जो मिले, अपकार, या उपकार, जगमगाती धूप या अंधियार।
संकटों के घन सघन ऊगले सुधा अथवा अगिन ।
तनकों न हो चाहें कफ़न पर, उठतो सही मेरे वतन। यह भी मुझे स्वीकार है ।

2. चित्रगुप्त लिखें अगर दिन रात तो लिखते रहे वे ।
पाप के अम्बार लगते हों अगर लगते रहे वे ।
क्षमा के सब द्वार तालों से मिलें, मिलते रहें वे ।
संकुचित युग धर्म की भी ऊंगलियां उठती रहें वे ।
कोठियां कोई किसी की, गगन का संदेश लाये है ।
चाबियां उनकी अतुल संपति का स्वर गुन गुनायें ।
मद भरें, या पुतलियों में अप्सरायें छम–छमायों ।
या कोई बन बन फिरें, एकांत में धूनी रमायें ।
मैं भूख भी कर लूं सहन, मिलती रहे तेरी चरण । यह भी मुझे स्वीकार है ।

3. स्वर्ग पर उपकार का ही, यह मेरा चैतन्य पायें ।
पर्थिव प्रलाप सुन–सुन, अंत की होली मनायें ।
जीवन मानुष देह लें या घास भूंस से अघायें ।
नीड़ का पक्षी बनें या वृक्ष, बन में, तन तपायें ।
हाथ की माला न सर के, होंठ चाहे हिल न पाये ।
किन्तु अवरुद्व कण्ठ केवल औम् रस में डूब कर ही ।
वेद की अनुपम ऋचाओं का मधुर स्वर गुनगुनायें ।
साकार हो मेरा सपन, चापूं दयानन्द की चरण ।

सार्थियां विदाई की समय

अरी म्हूं कुण की न्हालूं बाट, बलम ठेनिंग में रम ग्यो री ।

चीतकाल 1. अरी दिन जुग समान जावे, सरद रत माथे मंड़रावें।
सेज निचि दिन सूनी पावें, याद साजन की तड़फावें ।
कस्यां बीतेगा ये नौ मास, हालसूं नसों उतरग्योरी । अरी म्हूं

बसन्तकाल 2. बसन्तयां मौसम आयोरी, रूप धरती पे छायों री ।
कल्यां ने प्यार लुटाओरी, अंक में भंवरछिपाओंरी ।
हाय म्हुं कुण सूं खेलूं फाग, पीव पर देसां जमग्यों री ।

वर्षाकाल 3. घटा सावण की झुक आई, अन्धेरी बेरण बण आई ।
बीजली चमके दुरूख दाई, बीच में कोयल कूकांई ।
हूक सुण जिबड़ों धड़के हाय, अकेली बेवसी करग्यों री ।

विदाई 2 दिन पूर्व सुणी रे परसूं आबाकी, आभागण भाग जगाबा की ।
बाट में नयण बिछावा की, दरस सूं प्यास बुझावा की ।
प्राण अवश्या लें, दरसण आस कवेल तिमोंही करग्यों री ।

इतने में 5. काल ज्यूं कागद आयों आज, पीव म्हारों भोलों सिरताज ।
अरी पण यों दुखदाई राज, हाथ थांकि प्रभु म्हारी लाज ।
भलों जीबा सूं मरबों, पीव दूसरे जिले उतरग्यों री । अरी म्हूं कुण की रू

ताशकन्द में श्रर लालबहादुर चास्त्री प्रधान मंत्री
द्वारा अन्तिम सन्देच, ताशकन्द समझौते पर हस्ताक्षर कर देने पश्चात – रचना दिनांक 28.4.1966
रचयिता भमंगल

जननी अंतिम प्रणाम मेरा ।
प्रति जन्म करूं में टहल तेरी पाऊं ऐसा वरदान तेरा । जननी अंतिम
नभ धेरे में है आज चन्द्र राहु, केतू मडराते हैं ।
हैं मौन भीम और नकुल साथ द्रुपदा को विक्च रुलाते है ।
परक्च है बाघ पींजरे में रिपु का समाज स्वच्छन्द हुआ ।
रक्त से सींच जो अंग लिया, क्या पुन आज परतंत्र हुआ ।
जिन मित्र बंधु परिजन स्वदेच ने विदा किया था मुस्काकर ।
कैसे दिखलाऊं कटी नाक उन प्यारे स्वजनों को आकर ।
कर रहा आज अपराधी ज्यों दुनिया से कूंच उठा डेरा ।जननी अंतिम ।
ओ–वीर प्रसवनी, वीर मात, निर्माण कार्य करती रहना ।
चालीस कोटी तेरे सपूत तू वीर भाव भरती रहना ।
तुझको जो निज जननी समझे उनके दुखड़े हरती रहना ।
वे तेरे लाल पावे कष्ट धन धान्य भवन भरती रहना ।
तू एक लाल का नाम बाहदुर लाल नित्य धरती रहना ।
रिपु पाम चीन दल को दुर्गा फल मूल समझ चरती रहना ।
मैं पुन रू कोरव में तेरी ही जनमू संकल्प यहीं मेरा ।जननी अंतिम ।
क्या भुला सकूंगा जन्म–जन्म वह देच स्वर्ग से भी प्यारा ।
लेती अंगड़ाई जहां बसंत अनुपम गंगा यमुना धारा ।
है एक तरफ हिमगिरि प्रहरी और अगध सिन्धु दुर्जय खारा ।
जो वीर राम की भूमि सत्य से जहां सदा दूषण हारा ।
है वीर विजेता जहों सदैव पर सत्य अहिंसा का नारा ।
धरती का कुंकुम काश्मीर सौंदर्य लिए जग से न्यारा ।
उस पुण्य भूमि की सेवा में अर्पण गृहणी, धन, धाम मेरा ।जननी अंतिम ।

एक सैनिक की नव विवाहिता पत्नी की अभिलाषा

जीवन भर साधना की और परिणामस्वरूप जब अपने ।
नवीन साथी से मिली तो मिलते ही देय पर बलिदान
होने की चुनौती उस सैनिक को मिली उसकी झलक ।
रचयिता भमंगल

.....

अंकुरित यौवना, अभिलाषा आचल में आज संजो लाई ।
कंचन काया कुन्दन अंग मं लाल जड़ने आई ।

1. स्वप्न में नींद में लगातार कल्पना लोक में जागी हूं ।
सह भूख प्यास झूला बिसार अनदेखे से अनुरागी हूं ।
ग्रीष्म लू या सावन फुहार चीत की लहर पतझड़ खुमार ।
सब ने आभास आप का था निचि दिन रहता मन पर सवार ।
घर में , बन में, मग में, मठ में, पूजित देवी के दर्चन में ।
खेल में, मेल में, सखियों के आगमन, गमन आवर्तन में ।
वाणी के मूक तार स्वर से तेरा गायन सुन हर्षाई । अंकुरित यौवना ।

2. साधना सिद्वि जब खड़ी सामने यह संदेय साथ में है ।
निज जन्म भूमि पर अरिदल की नज़रें दिन–रात घात में है ।
मैं पल भर रुकन सकूंगा यह संगीन संगीनी हाथ में है ।
अब नहीं मधुर मिलनी बेला, अब सुख समरांगण बात में है ।
पहले सुनकर चौकी, सहमी, एक बज्राधात हुआ जैसे ।
राज का तिलक होते–होते फौरन बनवास हुआ जैसे ।
पर मन की तुला संभाली तो निज देय का पलड़ा भारी था ।
इस धरती का रस पी–पी उसका रोम–रोम आभारी था ।
बोली, तो चले आप रिपु पर टूटे, जाये न लाज मैं भी आई । अंकुरित यौवन

3. पानी ही प्राण मीन का तो बिछुडी कैसे जी सकती है ।
चन्द के बिना चकवी नगरी सूनी कब रह सकती है ।
मैने पतंग से न्यौछावर होने की कला सीखली थी ।
केवल चरणों में जीने की बिधना से मांग भीख ली थी ।
इस मातृ भूमि की धूरि और सिंधूर से मांग पुरो लाई ।
अंकुरित यौवना, अभिलाषा आचल में आज संजो लाई ।

रचनाकार मंगल रचना काल दिनांक 10.7.1991

आज का मानव जीवन ।
प्रश्नों के अंबारों में तब अटक रहा है मानव जीवन ।

1. अन्ध कूप में उलटी असि ज्यों लटक रहा है मानव जीवन ।
पाटों में पिस भोग –रोग के उलझा निकल नहीं पाता है ।
फंसा जाल में मृग समान छट–पटाता सुलझ नहीं पाता है ।
बाजारु अबला सा बेघर भटक रहा है मानव जीवन । अन्ध कूप में

2. कमियों की पीड़ाओं से मित्रता जोड़ने विक्य हो चुका ।
पद लो लुपता की पायल धुन–सुन अपना वर्चस्व खो चुका ।
अब तो बुढ़ियाई कन्या सा खटक रहा है मानव जीवन । अन्ध कूप में

3. अगणित दुरूव्यासन हाथों में पड़कर, बंगलों में फुट पाथों में ।
अरे, पांचाली की सतीत्व रक्षा जा पहुंची पामर हाथों में ।
अब, बेसहाय सिर चौराहे पर पटक रहा है मानव जीवन । अन्धकूप में

4. कलयुग के बढ़ते चरणों में, सतयुग के हथियार समर्पित ।
पिछले इतिहासों के पन्ने वर्तमान के हाथों अर्पित ।
सूली पर ईचामसी सा लटक रहा है मानव जीवन । अन्धकूप में ।
उलटी असि ज्यों लटक रहा है मानव जीवन ।

भरचयिता मंगल
रचनाकाल 16.5.1982

1. तब मेरा मन अकुलाता है
मंत्रालय से चल राजनीति, कालेज में चिक्षा पाती है ।
हर पुस्तक थक कर हो निराय, चिर निद्रा में सो जाती है ।
अभिभावक की भावी आचा जेबें खाली करवाती है ।
जब राम–लखन की चौर्य चक्ति बनवास में ही लुट जाती है ।
आचा की चंद्र किरण चीतल जब स्वयं आग बरसाती है ।
विषय अंधकार की भ्रमित चक्ति जब अमृत पर जय पाती है ।
मध्यान्ह सूर्य की उज्जवल छबि पर जब कालिख पुत जाती है ।
जब सोम पान को त्याग मनुज मदिरा में डूबा जाता है ।
तब मेरा मन अकुलाता है ।

2. इस वसुन्धरा का दुग्ध पान कर, विष का वमन किया जाता है ।
निज मां की गोदी में पल, सौतेली गुण गान किया जाता है ।
राण पद चिन्हित मार्ग छोड़ जय चंद राह जब अपनाता है ।
जब कफ़न नोचनेवाला भी दानी महान कहलाता है ।
प्रभु अजर आजन्मा को बिसार, जब भूत पूजने जाता है ।
तब मेरा मन अकुलाता है ।

3. धरती के प्रथम वृक्ष ने जग को फल–फल प्यार दिखलाया था ।
संतोष अहिंसा, ब्रइमचर्य, तप, त्याग, सत्य सिखलाया था ।
मुस्लिम, ईसाई, आर्य, बौद्व, सब ने यह ही अपनाया था ।
जब, अस्तेय नगर के कण–कण में पाखण्ड चोर घुस आया था ।
तब, गोतम, कणाद, वसिष्ठ, कपिल, मनु आचीर्वाद लुटाया था ।
श्रुति, ज्ञान से लाज बचाने को ऋषि दयानन्द खुद आया था ।
जब विश्व धर्म को त्याग मनुज मतवाद में गोते–खाता है ।
तब मेरा मन अकुलाता है ।

4. आसुरी चक्ति का जब–जब भी जिस–जिस युग में प्राबल्य हुआ ।
तामसी कियाओं के द्वारा सत् पदाक्रांत जाज्वल्य हुआ ।
तब–तब देवोपम मानव ने पावन कर्तव्य निभाया था ।
हर दुराचार की दो पहरी में चीतल जल बरसाया था ।
जब, दानवी दैत्य ने समरांगण में वीर हृदय भी दहलाया ।
कायर ने कर्मयोग का संदेचा गीता में तब पाया ।
चान्त नहीं बैठे जब जक प्युता का होता नहीं सफाया ।
देवों को आज निगलने को सुरसा ने चौड़ा मुख फैलाया ।
जब आर्य वीर ही स्वयं नाम अपना कहते चर्माता है ।
जब मेरा मन अकुलाता है ।

5. जब नारी पुरुष की पूरक थी, अंगुली की कील बनी रण में ।
खा कर तपस्विनी कन्द मूल दच चार वर्ष भटकी बन में ।
वह था विचार वह भाषा थी कवि की रचना–दीपक–बाती ।
विस्तार की सीमा दयान्नद की क्षमा क्रोध की बन जाती ।
स्वामी की आत्मा की चरीर, गायक की, मधुर रागनी वह ।
सिन्धु का किनारा बुद्वि ज्ञान की सुख सौन्दर्य साधनी वह ।
पर कभी मान मर्यादा का अपमान नहीं होने पाया ।
साड़ी की लाज गई न कभी दुचासन का बल थर्राया ।

जब किरण सिंहनी का रक्षित मीना बाजार लुटता है ।
तब मेरा मन अकुलाता है ।

6. पावन राम धरा अमृत में जब विष बोया जाता है ।
अरे, कपूतों भूल गये तो पिता महों से पूछो जाकर ।
उन का मल और मूत्र झेलकर लाड़ दिया गोद में सुलाकर ।
अहसानों का बदला तुमने दिया अंग मेरे कटावाकर ।
अपने कुल को त्याग, पोतली कालिख मेरा दूध लजा कर ।
करतूतों को देख तुम्हारे पूर्वज सिर झुक जाता है ।
तब मेरा मन अकुलाता है ।

रचनाकार 'मंगल'
राष्ट्र रचनाकाल 10.7.1991

नोटः अशोक वाटिका में सीता जी हनुमान जी की बात और सीता द्वारा सन्देश । (राग यमन पर आधारित)

वीर सन्देश जो अन्तिम क्षणों में लाये तुम ।
डूबती नाव की पतवार जैसे आये तुम ।

1. (देवर लक्ष्मण के प्रति)
मेरे कटु वाक्य उन को तीर से चुभते होंगे ।
फूल देवर के उर में कांटे ज्यों उगते होंगे ।
क्हना अपराध मेरे भूलें या क्षमा कर दें ।
अन्यथा सिन्धु में मुझको डूबा शिला धर दें ।
आर्य से मेरी व्यथा कहना जो पठाये तुम डूबती नाव की पतवार :

2. (हनुमान से)
क्या मेरे देश के आर्यों ने शौर्य छोड़ दिया ?
अपनी माटी की सुरक्षा से मन को मोड़ लिया ?
वीरों के देश में क्या कायरों के जत्थे हैं ?
पिनाक तोड़नेवाले क्या अब निहत्थे हैं ?
हाल बिखरे हुये जनतन्त्र के सुनाये तुम । डूबती नाव की पतवारः

3. अब भी क्या सैकड़ों सीतायें हरी जाती हैं ?
आत्मदाहों की चिताएं भी चुनी जाती हैं ।
हाय फुटपाथों पर निर्वस्त्र लाल हैं साते हैं ।
झुकी कमर से बढ़ता बोझ ऋण का हैं ढोते हैं ।
कितने बेहाल समाचार लेके आये तुम । डूबती नाव की पतवारः

4. ताज सापों के सिर पे मौंत मयूरों की क्यों ?
हाला बंगलों में ढुले झोंपड़ी आंसू क्यों ?
क्रम जो हत्याओं के नेताओं से न रूक पायें ।
मैं संभालूंगी कमान, मुझको आके ले जायें ।
तीर से चुभ रहे सन्देश जो सुनाये तुम । डूबती नाव की पतवारः

5. मूल्य कम हो गया मुद्रा का या कि मानव का ।
स्वर्ण रक्खा है रहन या कि मान भारत का ।
अपने सिद्धान्त की मंजिल से गिर गये नेता ।
देश बिखरेगा कई बार यदि नहीं चेता ।
बाहरी दानवों की जीभ लपलपाती है ।
उनको पैंसठ की, इक्हत्तर की शर्म खाती है ।
एटमी अस्त्र क्यों निर्माण कर न पाये तुम । डूबती नाव की पतवारः
जैसे आये तुम, वीरे सन्देश जो अन्तिम क्षणों में लाये तुम ।

रचनाकार 'मंगल' रचनाकाल 1,2 मार्च, 1993

निराकार – सरस्वती वन्दना 'राग कल्याण पर आधारित'

वेदमाता सुरसवती प्रणाम हो मेरा ।
सरस्वती की शरण में सुधाम हो मेरा ।

1. वेद शास्त्रों में तेरा रूप चमचमाता है ।
जिससे अज्ञान मिट, प्रकाश जगमगाता है ।
सारा विद्वन तेरा ही ब्रह्म तेज ध्याता है ।
तेरे दर्शन में रसिक सुख में डूब जात है ।
भीख मेधा की मिले, यह इनाम हो तेरा । वेदमाता .....

2. मेरी अभिलाष है, साहित्य महल में रहना ।
तेरे सानिध्य में अवसान तक टहल करना ।
कोई वित्तेषणा, लोकेषणा नहीं इच्छित ।
अन्त क्षण तक सृजन से मुझ को न करना वंचित ।
काव्य मंडित प्रत्येक, रोम, चाम हो मेरा । वेदमाता .....

3. तेरे आंचल में ज्ञान सिन्धु सुधा बहता है ।
देव वाणी में दया दान का स्वर रहता है ।
पवित्र कर्ता ज्ञान, बुद्धि की आकर तुम हो ।
अग्य तम क्लेश निवारक हो दिवा कर तुम हो ।
ब्रह्म रूपा की साधना ही काम हो मेरा । वेदमाता .....

4. सुना है गुणवती तुम दिव्य गुण लुटाती हो ।
आप गायत्री मोक्ष मार्ग भी बताती हो ।
कुमार्ग त्याग यज्ञ कर्म भी सिखाती हो ।
साधकों के हृदय में आप बैठ जाती हो ।
सच हो तो, सेवकों के साथ नाम हो मेरा । वेदमाता .....
सरस्वती की शरण में सुधाम हो मेरा ।।

रचनाकार 'मंगल' रचनाकाल 13 जनवरी, 1993

नोटः कवियों द्वारा बार–बार कवि–गोष्ठी का प्रोग्राम बनाने और फिर नहीं आने और मेरे द्वारा प्रतीक्षा करते रहने के फलस्वरूप रचना ।

शीर्षकः 'आपका सानिध्य पाता'

स्थाई

मैं न कोई गीत गाता, आपकी सुनता न मेरी कुछ सुनाता ।
चार छन्दों के सहित् यदि आपका सानिध्य पाता, अपना सब कुछ भूल जाता ।

1. मानता हूं तुम किसी कारण से आ पाये नहीं थे ।
यह विदित मुझको नहीं तुम चांद पर थे या यहीं थे ।
मेरी कुटिया में चरण लाये न क्या हिमगिरि चढे थे ।
या अशिक्ति पाक को शिक्षा सुनाने जा खडे थे ।
कल्पना द्वारा ही जो सन्देश मुझ तक पहुंच जाता ।
तो न खिडकी खोल बैठे मैं यहां पर उंघ पाता । यदि आप का .....

2. युगल वर्षो से प्रतीक्षा नैन कर–कर अंकित मेरे ।
कार्यक्रम से घृणा है या मीत इतने व्यथित मेरे ।
हिन्द की हिन्दी से यूं उपराम लखि दृग चकित मेरे ।
कर रहे क्यो रस भरे अनुराग दुख से ग्रसित मेरे
आज तो इतनी सुनाउंगा थकाउंगा सुनाता नचाता । यदि आपका .....

3. केश मानवता के निशि दिन इधर कोरव खींचते है ।
तज सुदर्शन उधर, राधा प्यार से मन सीचतें है ।
जब अहिंसक मनुज शोणित दनुज नित्य उलीचते हैं ।
देव वंशज इधर दायित्वों से आंखे मीचते है ।
मै उन निराशा वादियों को त्यागता, यदि जान जाता ।
मैं न कोई गीत गाता, आपकी सुनता न मेरी कुछ सुनाता ।
चार छन्दों के सहित् यदि आपका सानिध्य पाता ।

4. आज कवि की लेखनी की मांग क्षण–क्षण कर रहा है ।
शांति की पावन धरा में क्रान्ति कण–कण कर रहा है ।
मूक होना कर्णधारों के लिये शोभा नहीं है ।
मातृभाषा ऋण चुकाने का उचित अवसर यहीं है ।
ज्ञान जल कवि मेघ ढ़ोते और इधर सूखी महीं है ।
सृजन का देकर निमंत्रण, नींद से तुमको जगाता ।
चार छनदों के सहित् यदि आपका सानिध्य पाता ।

.....

मध्य रेल

क्रमांक :' जबलपुर/का./ प्रशा./श. ला./
मंडल रेल प्रबंधक कार्यालय
कार्मिक शाखा, जबलपुर ।

विषयः जाति प्रमाण पत्र बावत आवेदन पत्र ।

महोदय जी,

सविनम्र निवेदन है कि प्रार्थी श्री शंकर लाल पटेल, मोटर चालक (कै.वै. कार्यालय जबलपुर) से अनुसूचित जनजाति का प्रमाण पत्र मंगवाया गया है । जबकि प्रार्थी का समस्त जाति प्रमाण पत्र एवं सर्टिफिकेट आदि प्रार्थी के फाईल (मिसिल) में उपलब्ध है । प्रार्थी 28.08.79 से अब तक की सर्विस (करीबन 23 वर्ष) पूर्ण हो चुकी है, और अपनी ड्यूटी पर कार्यरत है । जब–जब प्रार्थी का टेस्ट एवं स्क्रपिंग टेस्ट हुआ है इसकी जाँच–पडऋताल हो चुकी है ।

महोदय जी से निवेदन है कि इसकी पूर्ण और सही तरीके से जाँच–पड़ताल कर प्रार्थी को सूचित करें । ताकि भविष्य में काम आये और मैं अपना कार्य पूर्ण लगन से कर सकूँ ।

कष्ट के लिये क्षमा प्रार्थी ।

संलग्नः जाति प्रमाण पत्र

प्रार्थी

(शंकर लाल पटेल)
मोटर चालक
सीनियर सेक्शन इंजीनियरिंग कार्यालय
कै.वै. जबलपुर

कार्यालयः
डी.आर.एम. जबलपुर
सीनि. डी.पी.ओ., जबलपुर
सी.डब्ल्यू.एस. जबलपुर
एन.आर.एम.यू. जबलपुर